फरवरी 2019

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन
मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

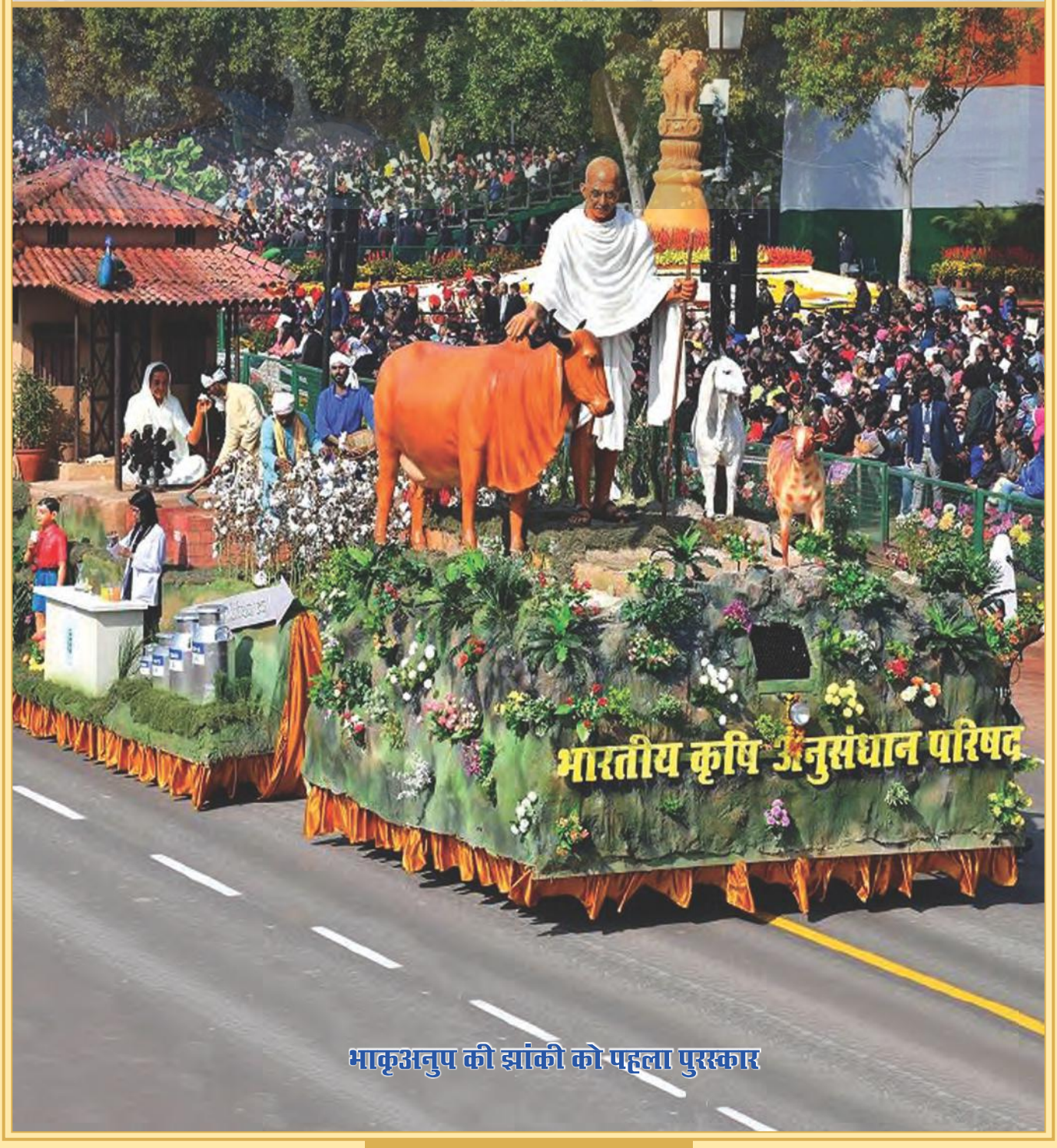

खेती

भाकृअनुप की झांकी को पहला पुरस्कार

www.icar.org.in

भाकृअनुप की 'किसान गांधी' झांकी को पहला पुरस्कार

किसान गांधी

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की विचारधारा में ग्रामीण समुदायों की समृद्धि और विकास में कृषि एवं पशुपालन की महत्वपूर्ण भूमिका थी। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण उन्होंने दुग्ध उत्पादन के बारे में ज्ञान अर्जन हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान के बेंगलुरु केंद्र पर वर्ष 1927 में 15 दिनों का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया था। गांधी जी ने इंदौर स्थित इंस्ट्रीयूट ऑफ प्लांट इंडस्ट्री में वर्ष 1935 में स्वयं जाकर इंदौर विधि से कम्पोस्ट तैयार करने की प्रक्रिया देखी और इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। महात्मा गांधी के चिन्तन में स्वदेशी नस्लों, जैविक कृषि तथा बकरी के दूध को उत्तम स्वास्थ्य हेतु बढ़ावा देना शामिल है।

गांधी जी के स्वप्न को पूरा करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि का कायाकल्प करने की दिशा में निरंतर कार्यरत है ताकि खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए हमारे अन्नदाता किसानों की आय में सकारात्मक बढ़ोतरी हो सके। उत्तम वैज्ञानिक तकनीकों के विकास एवं उनको बढ़ावा देने से भारत ने खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल कर ली है, साथ ही साथ हम विश्व में दूध एवं कपास उत्पादन में शीर्ष स्थान पर हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की इस झांकी में दुग्ध उत्पादन, देसी नस्लों के विकास एवं उपयोग तथा पशुपालन आधारित जैविक कृषि में उपयोगिता को गांव में समृद्धि हेतु दर्शाया गया है। झांकी के अग्र भाग में बापू जी बकरियों एवं गाय के साथ दिखाए गये हैं। बेहतर स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती तथा दूध उत्पादन में श्वेत तथा कपास क्रांति के साथ-साथ भोजन की गुणवत्ता के विश्लेषण हेतु प्रयोगशाला को प्रदर्शित किया गया है। झांकी के पिछले भाग में कस्तूरबा गांधी जी को चर्खा कातते एवं पशुओं की सेवा करते बापू कुटी, सेवाग्राम, वर्धा में दिखाया गया है। यह झांकी पशुधन आधारित, टिकाऊ एवं जलवायु अनुकूल खेती के महत्व पर प्रकाश डालती है।

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय के निदेशक पुरस्कार ग्रहण करते हुए

इस वर्ष गणतंत्र दिवस के मौके पर राजपथ से निकाली गई झांकियों में भाकृअनुप की झांकी ने पहला पुरस्कार प्राप्त करने में सफलता हासिल की है। परिषद को अपनी झांकी 'किसान गांधी' के लिए रक्षा मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण द्वारा एक समारोह में पुरस्कृत किया गया। खेती की इस झांकी में ग्रामीण समृद्धि के लिए दूध उत्पादन, स्वदेशी नस्लों और पशुधन पर आधारित जैविक कृषि के महत्व को प्रदर्शित किया गया। केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री एवं अध्यक्ष, भाकृअनुप श्री राधा मोहन सिंह ने इसके लिए परिषद के अधिकारियों को बधाई दी है।

70वें गणतंत्र दिवस की परेड के दौरान राजपथ पर निकाली गई कुल 22 झांकियों में 16 झांकियां राज्यों व विभिन्न केंद्र शासित प्रदेशों की थीं। इसमें विभिन्न मंत्रालयों और विभागों की छह झांकियां शामिल की गई थीं।

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान
की मासिक पत्रिका

वर्ष: 71, अंक: 10, फरवरी 2019

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
   नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक
अशोक सिंह
संपादन सहयोग
सुनीता अरोड़ा

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
अशोक शास्त्री

लेआउट डिज़ाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक: रु. 300.00

E-mail: khetidipa@gmail.com

विषय-सूची

संपादकीय **कृषि से संबद्ध अन्य व्यवसायों का महत्व–अशोक सिंह**

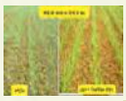
आवरण कथा — 3
गन्ने में पादपवृद्धि हार्मोन्स के फायदे
रमाकान्त राय, पुष्पा सिंह और राजीव कुमार

मात्स्यिकी — 5
जैव अवशेष आहार आधारित कार्प मछलियों का पालन
शशांक सिंह, राजीव कुमार ब्रह्मचारी, शिवेन्द्र कुमार और मुकेश कुमार सिंह

रोकथाम — 8
रेबीज से कैसे हो बचाव
हेमा त्रिपाठी और भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी

सुझाव — 12
थ्रेशर का रखरखाव और सावधानियां
एच.एल. कुशवाहा, आदर्श कुमार और देवेश कुमार

उत्पादन — 15
अजोला की बढ़ती उपयोगिता
रोहिताश यादव, प्रवीण कुमार, बी.के. शर्मा और एस.के. शर्मा

विकल्प — 17
नवीन व सस्ती सिंचाई पद्धतियां
दीपक हरि रानडे और एम.एल. जादव

कृषि उपकरण — 20
पौध रोपाई यंत्र की बढ़ती उपयोगिता
सुमन सिंह, हेमू राठौड़ और चारू शर्मा

वैज्ञानिक खेती — 21
मूंग उत्पादन बढ़ाने की उन्नत तकनीकें
वाई.पी. सिंह और सुधीर सिंह

संसाधन प्रबंधन — 27
मृदा गुणवत्ता में सुधार से बढ़ाएं कृषि उत्पादन
के.के. बंद्योपाध्याय, मनोज श्रीवास्तव, सनातन प्रधान और एम. मोहंती

दक्षता — 30
शुष्क क्षेत्रों में जल क्षमता बढ़ाने की तकनीकें
दशरथ सिंह और धर्मेन्द्र सिंह यशोना

मुर्गीपालन — 34
ब्रॉयलर चूजों की देखरेख एवं प्रबंधन
राम निवास

मशीनीकरण — 36
मशीनों द्वारा धान की बुआई, रोपाई एवं रोगों का प्रबंधन
अनुराग पटेल, एन. एस. चंदेल, प्रभाकर शुक्ला और पाटील अमोल माधव

कृषि कैलेण्डर — 42
फरवरी के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और एस.एस. राठौर

गणतंत्र दिवस परेड-2019
भाकृअनुप की 'किसान गांधी' झांकी को पहला पुरस्कार — आवरण II

गणतंत्र दिवस परेड-2018
भाकृअनुप की झांकी मिश्रित खेती-आय दोगुनी — आवरण III

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं, उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। लेखों में संस्तुत रसायनों के डोज का प्रयोग करने से पहले विशेषज्ञों से सलाह अवश्य लें।

कृषि से संबद्ध अन्य व्यवसायों का महत्व

कृषि विशेषज्ञों द्वारा बार-बार इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि देश के बहुसंख्यक छोटे, मंझोले और सीमांत कृषकों द्वारा की जा रही परंपरागत खेती के बल पर कृषक आय में ज्यादा बढ़ोतरी होने की गुंजाइश कम है। कृषकों की खस्ता आर्थिक हालत और आधुनिक कृषि के तौर-तरीकों में लगने वाली लागत को देखते हुए अमूमन कृषक समुदाय नए जोखिम उठाने से बचने का भरपूर प्रयास करता है। जलवायु परिवर्तन, जल संकट और अन्य कृषि आदानों की बढ़ती कीमतों ने भी इस कृषक बदहाली के संकट को गहरा दिया है। हालांकि केन्द्र और राज्य सरकारों के कृषि विभागों द्वारा कृषकों को तमाम तरह के प्रोत्साहन और रियायत भी प्रदान किए जा रहे हैं ताकि वे बदलते समय के अनुसार वैज्ञानिक खेती को अपनाएं।

इस क्रम में समन्वित कृषि की अवधारणा को आय बढ़ोतरी की दृष्टि से काफी प्रासंगिक और उपयोगी माना जा रहा है। ऐसे में किसानों को खेती-बाड़ी के साथ अन्य कृषि से संबद्ध व्यवसायों/कार्यकलापों को समेकित ढंग से अपनाने के बारे में गंभीरतापूर्वक विचार करना पड़ेगा। इससे वे बिना अतिरिक्त निवेश और श्रम के आमदनी में सकारात्मक बढ़ोतरी कर पाने में सफल हो सकते हैं।

अध्ययनों से यह उभरकर सामने आया है कि प्रति बकरी से वर्ष भर में 2000 रुपये तक की आय प्राप्त कर पाना संभव है, जबकि यह असलियत में बमुश्किल औसतन 1200-1300 रुपये प्रति बकरी आय के स्तर पर है। इस क्रम में बकरी के दूध की बिक्री से प्राप्त आय और इससे तैयार होने वाले पनीर (चीज) का विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है। यही नहीं ग्रामीण महिलाएं बकरी चर्म से तैयार होने वाले विभिन्न उत्पादों से भी अतिरिक्त आय अर्जित कर सकती हैं।

मधुमक्खी पालन एक अन्य महत्वपूर्ण व्यवसाय है, जिसके जरिये कृषक बड़ी आसानी से और बिना किसी अतिरिक्त लागत के अपनी आय में बढ़ोतरी कर सकते हैं। वैसे भी मधुमक्खियों की निरंतर घटती आबादी कृषि वैज्ञानिकों के लिए गंभीर चिंता का कारण बन चुकी है। मधुमक्खियां फसलों में परागण कर न सिर्फ उपज बढ़ोतरी में सहायक होती हैं बल्कि ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों के लिए अतिरिक्त आमदनी का भी सुलभ जरिया भी हैं। एक मधुछत्ते से औसतन 40 किलोग्राम तक शहद की प्राप्ति हो जाती है। अगर 100 रुपये किलो की न्यूनतम कीमत पर भी इसकी बिक्री की जाती है तो 4 हजार रुपये की आमदनी बिना किसी अतिरिक्त श्रम और लागत के मिल जाती है। यही नहीं अन्य मधुमक्खी पालकों से शहद इकट्ठा कर बाजार में बेचने का काम करते हुए भी कमाई की जा सकती है।

इसी तरह से दूध उत्पादन, मछली पालन, सूअर पालन, मशरूम उत्पादन, रेशम कीट पालन, भेड़ पालन आदि जैसे कृषि से संबद्ध व्यवसायों को अपनाया जा सकता है। इन्हें खेती-बाड़ी के साथ करते हुए रोजगार के साथ आय के अवसरों को बढ़ाया जा सकता है। ऐसे कृषि संबद्ध व्यवसायों को शुरू करने से पूर्व निकटतम कृषि संस्थानों/कृषि विश्वविद्यालयों/एटिक/केवीके आदि से आवश्यक जानकारी और प्रशिक्षण अवश्य लेना चाहिए।

कृषक समुदाय के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि वे इस दिशा में स्वंय पहल करें।

(अशोक सिंह)

गन्ने में पादपवृद्धि हार्मोन्स के फायदे

रमाकान्त राय, पुष्पा सिंह और **राजीव कुमार**
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226002 (उत्तर प्रदेश)

“रात भर गन्ने के तीन आंख के टुकड़ों को इथ्रेल (100 पीपीएम) में डुबोकर बुआई करने और विकसित हुए पौधों पर 90, 120 और 150 दिनों पर उनके गोप में जिबरैलिक एसिड (35 पीपीएम) का छिड़काव सुबह 9 बजे से 11 बजे तक करने से गन्नों के टुकड़ों की ताकत बढ़ जाती है। उनमें प्रस्फुटन की क्षमता तथा अधिक पौधों की संख्या कम अंतराल में ही बन जाती है। इथ्रेल के प्रभाव से गन्ने के टुकड़ों का अंकुरण भी ज्यादा और शीघ्रता से होता है।”

गन्ने के पौधों की संख्या 20 दिनों के बाद। उपचार से पौधों की पत्तियों की विकास दर और उनका बढता क्षेत्रफल

गन्ने के टुकड़ों को 100 पीपीएम इथ्रेल में रातभर डुबोकर छोड़ दिया जाता है और सुबह उन्हें निकालकर बावस्टिन में डुबोकर बुआई की जाती है। बुआई के दौरान 75 सें.मी. नाली से नाली की दूरी में प्रति एक मीटर में 4–5 टुकड़े डाल दिए जाते हैं। बुआई के 20 दिनों बाद ही 60 प्रतिशत ज्यादा अंकुरण इथ्रेल उपचार के द्वारा हो जाता है। कंट्रोल में मात्र 40 प्रतिशत अंकुरण 45 दिनों में हो पाता है। पैंतालीस दिनों के बाद इथ्रेल के द्वारा 73,334 पौधे/हैक्टर जबकि कंट्रोल में 40,000 पौधे/हैक्टर मिलते हैं। ऐसा परिवर्तन इथ्रेल के प्रभाव के कारण एसिड इनर्वेज और एटीपीएज किण्वकों की क्रियाशीलता के कारण संभव हो पाता है। इसमें सुक्रोज टूटकर अपचयित शर्करा बनाता है, जो वृद्धि में काम आती है और कलिकाओं

इथ्रेल एंव जिबरैलिक एसिड का गन्ने की पहली पेड़ी पर प्रभाव

गन्ने की पहली पेड़ी शुरू करने के बाद सूखी पत्तियों को खेत में बिखेरकर करना ज्यादा लाभकर रहता है

अगर पेड़ी फसल शुरू करने के बाद खेत में गन्ने की सूखी पत्तियों को बिछाकर (12 टन/हैक्टर) उस पर पूसा कम पोस्ट इनाकुलेण्ट (300 ग्राम/टन सूखी पत्ती) डाल दें और हल्की सिंचाई करके 15 दिनों बाद उलट दें तो सूखी पत्तियां सड़ने लगती हैं।

सूखी पत्तियों के सड़ने के बाद उनकी गुड़ाई आवश्यक

गन्ने के पौधों की संख्या और उसकी लंबाई पर जिबरैलिक एसिड का प्रभाव

इथ्रेल का प्रभाव

गन्ने के किल्लों के निकलने पर इथ्रेल का प्रभाव (60 दिनों के बाद)

इससे पत्तियां जल्दी से जमीन को आच्छादित कर लेती हैं। प्रकाश संश्लेषण अधिक होने के कारण किल्लों की संख्या अधिक और उनमें विकास तेजी से होता है। पत्तियों का कोण 28^0–30^0 होने के कारण प्रकाश लेने की क्षमता बढ़ जाती है। इसके अलावा पत्तियों का क्षेत्रफल ज्यादा दिनों तक प्रकाश संश्लेषण के लिए उपलब्ध रहता है। इस कारण पोरों की लंबाई अधिक हो जाती है और उनमें कार्बोहाइड्रेट का संचयन ज्यादा होता है।

जिबरैलिक एसिड का छिड़काव गोप में करते हुए

इथ्रेल और जिबरैलिक एसिड के प्रभाव से अधिक बढ़ जाती है गन्नों की संख्या और उनकी लंबाई

जिबरैलिक एसिड के प्रभाव से बढ़ जाती है गन्ने के पोरों की लंबाई और उसमें होती है चीनी ज्यादा

गन्ने की तैयार फसल पर जिबरैलिक एसिड का प्रभाव

का प्रस्फुटन बहुत बढ़ जाता है। इन पौधों की पत्तियों की विकास दर और उनका क्षेत्रफल भी तेजी से बढ़ जाता है।

ऐसे में गन्नों की संख्या उनकी लंबाई और भार अधिक मिलता है, जिसके कारण गन्ने और चीनी की पैदावार अधिक हो जाती है।

इसी प्रकार पेड़ी की फसल शुरू करने के 60 दिनों के बाद इथ्रेल (100 पीपी एम) और जिबरैलिक एसिड का 90, 120 और 150 दिनों के बाद छिड़काव करने पर पेड़ी फसल की पैदावार लगभग दोगुनी मिलती है।

पुनः पौधों पर इथ्रेल (100 पीपीएम) 60 दिनों बाद, जिबरैलिक एसिड (90, 120 और 150 दिनों के बाद) छिड़काव करने पर पेड़ी गन्ने की पैदावार 183.2 टन/हैक्टर मिलती है, जबकि कंट्रोल की पैदावार 99.8 टन/हैक्टर होती है।

जब पौध वृद्धि हार्मोन्स का प्रयोग करते हैं तब एक औसत गन्ने का भार 598 ग्राम मिलता है, अन्यथा 501 ग्राम ही मिलता है। कुल पेराई के लिए उपलब्ध गन्नों की संख्या 3.06 लाख/हैक्टर मिलती है और कंट्रोल में केवल 1.53 लाख/हैक्टर गन्ने मिलते हैं।

इस तरह का प्रभाव भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान के बिहार के केन्द्र पर भी देखा गया। जहां एक गन्ने का औसत भार 853 ग्राम मिला और कुल गन्नों की संख्या 3.02 लाख/हैक्टर मिली और कुल पैदावार 258 टन/हैक्टर प्राप्त हुई। कंट्रोल में कुल गन्ने 1.67 लाख/हैक्टर प्राप्त हुए और पैदावार 108 टन/हैक्टर मिली और एक गन्ने का औसत भार 643 ग्राम प्राप्त हुआ।

जैव अवशेष आहार आधारित कार्प मछलियों का पालन

शशांक सिंह, राजीव कुमार ब्रह्मचारी, शिवेन्द्र कुमार और **मुकेश कुमार सिंह**[1]
मात्स्यिकी महाविद्यालय, डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, ढोली, मुजफ्फरपुर-843121 (बिहार)

"हमारे देश में मत्स्य उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है। इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि सन् 1991-92 में यह उत्पादन 4.157 मिलियन टन था और वह आज बढ़कर लगभग 11.41 मिलियन टन हो गया है। इस उत्पादन में अंतर्स्थलीय जल क्षेत्र का योगदान 7.77 मिलियन टन है और इसमें कार्प मछलियां लगभग 87 प्रतिशत का योगदान करती हैं। मिश्रित मत्स्य पालन करने के दौरान मत्स्यपालकों द्वारा मत्स्य प्रबंधन के कुल व्यय का लगभग 60-70 प्रतिशत व्यय उर्वरकों तथा पूरक आहार पर किया जाता है। जैव अवशेष आधारित मत्स्य पालन करने से मछलियों को न सिर्फ आवश्यक सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति भी बेहतर ढंग से होती है बल्कि उनकी वृद्धि पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है।"

कार्प मछलियों में मुख्य रूप से भारतीय मेजर कार्प का मिश्रित पालन करना एक प्रचलित विधि है। इसमें कतला या भाकुर, रोहू तथा मृगल तालाब के विभिन्न स्तरों, क्रमशः ऊपरी, मध्यम तथा निचले स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक आहार ग्रहण करती हैं। यह भी देखा गया है कि इन मछलियों के साथ-साथ विदेशी कार्प मछलियां जैसे सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प तथा कॉमन कार्प का पालन भी किया जा सकता है। पूरक आहार के रूप में दी गई कुल मात्रा का मछलियों द्वारा उपभोग नहीं हो पाता है। यह आहार पानी में व्यर्थ हो जाता है तथा तालाब की तली में जमा होकर तालाब के पर्यावरण को भी प्रदूषित करता है। इस दौरान कई बार तालाब में अमोनिया या अन्य विषैली गैसों की मात्रा भी मत्स्य आहार के उचित प्रबंध ना करने के कारण बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में बढ़ी हुई अमोनिया को नियंत्रित करने तथा मत्स्य आहार पर होने वाली लागत को कम करने के लिए जैव अवशेष आधारित मत्स्य

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, (डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय), दरभंगा-847302 (बिहार)

बांस की छड़ियों पर बायोफिल्म

पालन को शोधकर्ताओं ने काफी हद तक कारगर माना है। जल की गुणवत्ता को बनाये रखने में भी यह अत्यंत सहायक है।

तालाब प्रबंधन

विभिन्न प्रकार के जलीय खरपतवारों के नियंत्रण के लिए इनका उन्मूलन भौतिक, यांत्रिक, रासायनिक तथा जैविक विधियों से किया जाता है। भौतिक विधि से नियंत्रण के लिए खरपतवारों को हाथ से उखाड़कर अथवा हंसिये से काटकर फेंक देते हैं। यांत्रिक विधि से छोटे डीजल अथवा बिजलीचालित उपकरणों का प्रयोग करके इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है। रासायनिक विधि में 2, 4-डी का प्रयोग विभिन्न खरपतवारों के नियंत्रण के लिए मददगार होता है। इसका छिड़काव खरपतवारों की सघनता की दर से किया जाता है। जैविक विधि से उन्मूलन अत्यधिक प्रभावी तथा आर्थिक दृष्टिकोण से भी उपयुक्त माना जाता है। इसके लिए ग्रास कार्प, *पुण्टियस जापोनिकस, तिलापिया* तथा कॉमन कार्प का प्रयोग किया जा सकता है। अवांछनीय, खाऊ तथा परभक्षी मछलियों

गन्ने की खोई

बायोफिल्म का उत्पादन

मछलियों के संचयन के पश्चात तालाब में बायोफिल्म का उत्पादन कृषि से आये हुए अनुपयोगी अपशिष्टों का प्रयोग करके किया जाता है। इसके लिए गन्ने की सिट्ठी, बांस की करची, पुआल इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है। जब गन्ने की सिट्ठी का प्रयोग करके बायोफिल्म का उत्पादन करना होता है, तो एक हैक्टर के तालाब में प्रयोग करने के लिए 2400 कि.ग्रा. की दर से लगभग 10 घंटे पूर्व इसे भिगो दिया जाता है। पहले से भिगोई हुई गन्ने की इन सिट्ठियों के छोटे-छोटे बंडल तैयार कर लिए जाते हैं। इन बंडलों को तालाब में बांस की सहायता से बांधी गई रस्सियों से कई स्थानों पर लटका दिया जाता है। अब इन सिट्ठियों पर विभिन्न प्रकार के जीवाणु तथा प्लवक चिपकते जाते हैं। मछलियां एवं झींगे इन्हें आसानी से खाद्य रूप में ग्रहण कर लेते हैं। शोध में पाया गया है कि बायोफिल्म में 37 विभिन्न प्रजातियों के जीव उपलब्ध होते हैं। इस तरह की पालन विधि में मछलियों को दिए जाने वाले आहार में कुछ कमी की जा सकती है। इससे मत्स्य उत्पादन में होने वाली लागत में कमी आती है। गन्ने की सिट्ठियों को हर तीन महीने पर बदल देने से बायोफिल्म में पाए जाने वाले जीवों की सघनता तथा जल की गुणवत्ता बनी रहती है। तालाब के जल की गुणवत्ता की जांच समय-समय पर करते रहना चाहिए। एक शोधकर्ता ने पाया है कि बायोफिल्म वाले तालाब के जल की गुणवत्ता सामान्य तालाब की अपेक्षा ज्यादा बेहतर थी और इसमें अमोनिया की मात्रा भी कम थी। अनेक शोधों में यह बताया गया है कि बायोफिल्म में मौजूद नाइट्रीफाइंग जीवाणु जल की शुद्धता में सहायक होते हैं। जैव आधारित मत्स्य पालन करने से तालाब में उपस्थित अतिरिक्त पोषक तत्व बायोफिल्म की वृद्धि में सहायक होते हैं। इससे पानी की गुणवत्ता बनी रहती है और रोगजनक जीवाणुओं का खतरा भी कम होता है।

गेहूं के भूसे पर बायोफिल्म

क्या है बायोफिल्म या जैव अवशेष आधारित पालन

जैव अवशेष आधारित पालन में जीवाणु, पादप प्लवक इत्यादि किसी ठोस आधार अथवा जैव अवशेषों की सतह से चिपककर एक समूह का निर्माण करते हैं। इसे वैज्ञानिक भाषा में बायोफिल्म कहते हैं। बायोफिल्म, जैव अवशेषों अथवा अन्य ठोस आधारों की सतह से जुड़े जीवाणुओं, पादप प्लवकों इत्यादि के अपरिवर्तनीय संयोजन होते हैं। साधारणत: बायोफिल्म की संरचना अवशेषों अथवा आधारों की प्रकृति, पोषक तत्व उपलब्धता, प्रकाश एवं मछलियों के खाने की क्षमता पर निर्भर करती है। तालाबों में बायोफिल्म के विकास के लिए उचित ठोस आधार का होना आवश्यक है। वैसे तो तालाबों में जीवाणुओं या प्लवकों की मौजूदगी होती ही है। ये मछलियों द्वारा खाने के लिए हमेशा उपलब्ध नहीं हो पाते, जबकि अगर आधारों की मौजूदगी हो तो ये जीवाणु एवं प्लवक इन आधारों से चिपककर एक बड़े समूह का निर्माण करते हैं, जिन्हें मछलियां बड़ी आसानी से खाने के लिए उपयोग करती हैं। जैव अवशेष आधारित मछली पालन पद्धति में प्रबंधन की क्रियाएं मिश्रित मत्स्य पालन जैसी ही होती हैं। पोषण के लिए मछलियों की पूरक आहार पर निर्भरता काफी हद तक कम हो जाती है। साथ ही, इस पद्धति से पाली गई मछलियां अपेक्षाकृत ज्यादा स्वस्थ एवं निरोग रहती हैं। इस तरह के मत्स्य पालन के लिए भी तालाब का उचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए तालाबों के बांध की मरम्मत, जलीय खरपतवारों का नियंत्रण, खाऊ तथा परभक्षी मछलियों का उन्मूलन, उर्वरीकरण, मछलियों का संचयन, पूरक आहार की व्यवस्था, जल की गुणवत्ता की समय-समय पर जांच, रोगों की रोकथाम आदि पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

के उन्मूलन के लिए तालाब को पूरी तरह सुखाना एक प्रभावी विधि है। इसमें परभक्षी मछलियों को जड़ से समाप्त किया जा सकता है। अत: महुआ की खली का उपयोग 2500 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से उपयुक्त पाया गया है। इसके पश्चात तालाब के पी-एच मान के अनुसार चूने का प्रयोग करें। यदि तालाब का पी-एच 6.5 से 7.0 के मध्य हो तो 200 कि.ग्रा./हैक्टर चूने का प्रयोग किया जाता है। यह तालाब के जल को क्षारीय बनाता है। इसके अलावा मछलियों तथा उनके प्राकृतिक आहार के विकास के लिए लाभप्रद होता है। चूने के प्रयोग के एक सप्ताह पश्चात गोबर की खाद का प्रयोग 1250 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तथा खाद के प्रयोग के 5-7 दिनों पश्चात यूरिया तथा ट्रिपल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग क्रमश: 31 कि.ग्रा./हैक्टर तथा 16 कि.ग्रा./हैक्टर किया जाता है। इसके बाद प्रत्येक माह मत्स्य पालन के दौरान 1000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर गोबर का प्रयोग प्लवक उत्पादन के लिए बहुत उपयोगी होता है। यदि अवांछनीय मछलियों के उन्मूलन के लिए महुआ की खली का प्रयोग किया गया हो तो गोबर की खाद की प्रारंभिक खुराक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

उर्वरीकरण के तीन से पांच दिनों के बाद प्लवकों का उत्पादन हो जाता है। इससे तालाब मछलियों के बीज के संचयन के लिए उपयुक्त हो जाते हैं। मात्स्यिकी महाविद्यालय, ढोली में हुए शोध में 10000 अंगुलिकाओं का संचय एक हैक्टर तालाब में कतला, रोहू, मृगल एवं कॉमन कार्प के क्रमश: 3:3:2:2 के अनुपात में उपयुक्त माना गया है। इसके अतिरिक्त देश भर में हुए अन्य शोधों में यह पाया गया है कि जैव अवशेष आधारित मत्स्य पालन (बायोफिल्म) में रोहू, झींगा, कॉमन कार्प, कालबासू आदि मछलियों की वृद्धि अधिक होती है। इस प्रकार के शोधों में मछलियों की वृद्धि दर 15 से 50 प्रतिशत तक अधिक पाई गई है।

बायोफिल्म, मछलियों की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करती है। बायोफिल्म का विकास प्राकृतिक टीकाकरण के उद्देश्य की पूर्ति भी करता है। इसकी उपस्थिति में पाले गए झींगों की उत्तरजीविता में सामान्य तालाबों की अपेक्षा अधिक वृद्धि पाई गई है। यह बताया गया है कि इस तरह के तालाब किस लिए उपयुक्त होते हैं। यह *कानाबलिज्म* (बड़े झींगों द्वारा छोटे झींगों को खा जाना) को कम करते हैं। बायोफिल्म के पोषक तत्वों का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि इसमें 23-30 प्रतिशत प्रोटीन, 2-9 प्रतिशत वसा, 25-28 प्रतिशत नाइट्रोजनमुक्त सार (एन.एफ.ई.) तथा 16-42 प्रतिशत राख होती है, जो कि मछलियों को दिए जाने वाले पूरक आहार के प्रोटीन की मात्रा के लगभग बराबर होता है। इसके अलावा बायोफिल्म से मछलियों को विभिन्न सूक्ष्मतत्वों की प्राप्ति भी होती है, जो कि इनकी वृद्धि में अहम योगदान देते हैं।

सामान्यत: देखा गया है कि जो मत्स्यपालक दैनिक आहार नहीं देते हैं अथवा आहार सप्ताह में दो से तीन बार देते हैं उन्हें ऐसी पद्धति से मत्स्य पालन करने से 2000-2500 कि.ग्रा./हैक्टर/वर्ष उत्पादन प्राप्त होता है। महाविद्यालय में हुए शोध में पाया गया है कि 2 प्रतिशत आहार का प्रयोग करके मत्स्य उत्पादन 3000-3200 कि.ग्रा./हैक्टर/वर्ष लिया जा सकता है। इस प्रकार मत्स्यपालक कम लागत में अधिक उत्पादन करते हुए ज्यादा मुनाफा ले सकते हैं।

रेबीज से कैसे हो बचाव

हेमा त्रिपाठी[1] और **भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी**[2]
भाकृअनुप-केंद्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार (हरियाणा)

“आवारा कुत्तों के काटने की खबरें व इनसे होने वाली मौतों के विषय में आप रोजाना अखबारों में पढ़ते व टेलीविजन में देखते होंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार दुनिया में मानव रेबीज की मौतों की सबसे ज्यादा संख्या भारत में देखने में आई है। पिछले कुछ दशकों में देश में इस आंकड़े में 30 प्रतिशत तक गिरावट दर्ज की गई है। एंटीरेबीज टीकाकरण से इस रोग से होने वाली मृत्यु को कम करने में मदद मिली है। कुत्ते 17 प्रतिशत मानव रेबीज के लिए जिम्मेदार हैं, बिल्लियां 2 प्रतिशत और बंदर तथा अन्य 1 प्रतिशत रेबीज के लिए जिम्मेदार हैं। वर्ष 2014 में पूरे देश से 125 रेबीज की मौतों की सूचना मिली जो 2015 में 113 और 2016 में 86 रह गई थी। इसमें पश्चिम बंगाल सबसे अधिक प्रभावित राज्य था। गौरतलब है कि अमेरिका, कनाडा, जापान, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में कुत्तों में रेबीज का उन्मूलन हो चुका है।”

दुनियाभर में आवारा कुत्तों की संख्या करीब 200 से 600 मिलियन है, अकेले यूरोप में 100 मिलियन कुत्तों का अनुमान है। भारत में लगभग 30 मिलियन आवारा कुत्ते हैं। दूसरे शब्दों में औसतन 42 लोगों पर एक कुत्ता आंका गया है।

देश में कुत्तों और बंदरों की संख्या असीमित होने के कारण इनके द्वारा काटने की घटनाएं बहुत अधिक होती रहती हैं। कुत्ते के हमले या काटने पर मनुष्य के मस्तिष्क पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ सकता है। कुत्ते के हमले से व्यक्ति को अपने पूरे जीवन में कुत्तों से डर के जीना पड़ सकता है तथा उस व्यक्ति के व्यक्तित्व और व्यवहार में परिवर्तन देखा जा सकता है। इस रोग के लक्षण देर से प्रकट होते हैं और तब इस पर काबू पाना मुश्किल हो जाता है। अत: जरा भी संदेह होने पर तुरंत उपचार करवाना चाहिए।

आइये जाने इस जानलेवा रोग रेबीज के बारे में, जो पागल कुत्ते, बन्दर आदि के काटने से पशुओं व मनुष्यों में फैलता है।

कुत्तों में रेबीज के लक्षण

रेबीज के लक्षणों में काफी भिन्नता पाई जाती है। प्रारंभिक लक्षणों में जीव के व्यवहार में परिवर्तन, ‘आक्रामक रूप’ (फ्यूरियस फॉर्म) में रोगी जानवर का अत्यधिक उत्तेजित, आक्रामक, चिड़चिड़ा एवं हवा में झपटना आदि हैं। ‘मूल स्थिति’ में रोगी कुत्ता चुपचाप एक कोने में पड़ा रहता है। किसी को पहचान नहीं पाता और उसको मतिभ्रम का दोष हो जाता है। आवाज में परिवर्तन, मुंह से झाग निकलना व लड़खड़ाने लगता है। रोगी पशु पक्षाघात का शिकार हो जाता है। 7 दिनों के अंदर श्वसनतंत्र निष्काम होने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। रोगी पशुओं के मुंह से लार बहना, मुंह खुला रखना, पूंछ सिमटी होना, आवाज के स्वर में परिवर्तन और कानों का असामान्य ढंग से लटक जाना, रास्ते में आने वाली हर चीज को काटना, अत्यंत उग्र अथवा सुस्त हो जाना, अपने स्वामी की आज्ञा न मानना तथा पक्षाघात (फालिज) इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। इसमें कुत्ता पानी नहीं पीता व लार बहती रहती है। अंतिम अवस्था में शरीर में लकवा पड़ जाता है व मृत्यु हो जाती है। लक्षण पूर्ण प्रकट होने के तीन दिनों के अंदर रोगी पशु मर जाता है।

पशुओं में रेबीज से रोकथाम

रोकथाम के लिए कुत्तों का टीकाकरण कराना आवश्यक है। पहला एंटीरेबीज टीका 3 माह की आयु में तत्पश्चात छ: माह की आयु पर बूस्टर डोज लगवाना चाहिए। इसके बाद नियमित रूप से एक साल के अंतराल पर टीका लगवाते रहना चाहिए। वैसे बूस्टर देने के बाद तीन वर्ष तक बचाव रहता है। हर वर्ष टीका लगवाने से कोई हानि नहीं है तथा बचाव पूर्णरूप से होता है।

पागल कुत्ते द्वारा अन्य पशुओं में रेबीज

यह रोग जितना मनुष्य के लिए घातक होता है उतना ही दुधारू पशुओं (गाय, भैंस, बकरी) के लिए भी जानलेवा होता है। अक्सर पशु जब चरने के लिए जाते हैं तो पागल कुत्ते उन्हें अपना शिकार बना लेते हैं। पशुपालकों

[1]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप-केंद्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार (हरियाणा); [2]निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान संस्थान, हिसार (हरियाणा)

को जानकारी न होने के कारण वे इसे समझ नहीं पाते हैं और पशु की मृत्यु हो जाती है। यह रोग एक पशु से दूसरे पशु में भी फैलता है। रोग के लक्षण पैदा होने के बाद इसका कोई इलाज नहीं होता है। अक्सर देखा जाता है कि गांव में पागल कुत्ते पशुओं जैसे गाय, भैंस और बकरी को काट लेते हैं। पशुपालक को पता ही नहीं चलता कि कब इनमें रेबीज के लक्षण पनप गए। जब वह खाना-पीना कम कर देती है, बार-बार रंभाती है और बिदक जाती तो डॉक्टर से उसकी जांच कराने पर भी कुछ पता नहीं चलता और सही इलाज न मिलने पर पशु मर जाता है। ग्रामीण भारत में बसे छोटे परिवारों के लिए उनके दुधारू पशु आय का प्रमुख स्रोत होते हैं। ऐसे में रेबीज जैसे रोग खामोशी से इन परिवारों की आय को उनसे छीन रहे हैं।

कुत्ता काटने पर पशुपालक ऐसे करें बचाव

पागल कुत्ते द्वारा काटे गए भाग को फिनोलयुक्त लाल साबुन (लाइफबॉय) व पानी से अच्छी तरह धोयें, इसमें कार्बोलिक एसिड की मात्रा ज्यादा होती है। कार्बोलिक एसिड को पशुपालक मेडिकल स्टोर से खरीद भी सकता है। कटे भाग में टांके न लगवायें। पागल पशु द्वारा काटे गए पशुओं को तुरंत बचाव के लिए टीके लगवायें (काटे गए दिनों पर व फिर 3, 7, 14, 28, 90 दिनों बाद टीका लगवायें)। पशुपालक के ऐसा नहीं करने पर पशु मर भी सकता है।

पशुपालक अपने पशुओं में एंटी रेबीज का वैक्सीनेशन (टीकाकरण) पहले से भी करा सकते हैं। ऐसे दांत काटे हुए पशु को अलग बांधें और उसका खाना-पीना भी अलग कर दें। पशुओं को इस रोग से बचाव के लिए साल में एक बार एंटी रेबीज का टीका लगवाना चाहिए, ताकि कोई जानवर अगर दुधारू पशु को काटे तो वो मरने से बच सके। संभावित पागल कुत्ते अथवा काटने वाले जानवर को बांधकर 15 दिनों तक उसके व्यवहार में परिवर्तन, पागलपन तथा मृत्यु के लिए निरीक्षण करें।

पशुओं में रेबीज के लक्षण

पशु जोर-जोर से रंभाने लगता है और बीच-बीच में जम्हाइयां लेता हुआ दिखाई देता है। पशु अपने सिर को किसी पेड़ अथवा दीवार पर मारता रहता है। पानी पीने से डरने लगता है। रोगग्रस्त पशु दुबला हो जाता है। एक दो दिनों के अंदर उपचार न मिले तो पशु मर भी सकता है। पशुओं में रेबीज दो रूपों में देखा जाता है। पहला जिसमें रोगग्रस्त पशु काफी भयानक हो जाता है और रोग के सभी लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। दूसरा जिसमें वह बिल्कुल शांत रहता है। इसमें रोग के लक्षण बहुत कम अथवा नहीं के बराबर दिखाई देते हैं।

रेबीज की रोकथाम के लिए सामाजिक जिम्मेदारी

भारत में लोगों को रेबीज के बारे में पर्याप्त जानकारी न होना एक गंभीर समस्या है। अत: इस रोग की जानकारी व सावधानी ही इसका सबसे अच्छा बचाव है। रोकथाम के उपाय न करने से घातक परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं। ध्यान दें कि जानवर के काटने पर बिना घबराये, तुरंत उपचार करा लें। अपने पालतू पशु को खुला न छोड़ें। वन्य पशु को पालतू पशु की तरह न पाला जाये। अनजान पशु को हाथ न लगाएं। यदि पालतू कुत्ते या बिल्ली में रेबीज होने का संदेह हो तो जानवर को अलग रखें तथा पशु चिकित्सक की सलाह लें। रेबीज से ग्रसित पशु का दूध कदापि न पिएं। किसानों एवं पशुपालकों को प्रचार माध्यमों द्वारा इस रोग के विषय एवं बचाव के उपायों के बारे में व्यापक स्तर पर शिक्षित करने की आवश्यकता है।

मनुष्य हेतु प्री एक्सपोजर अथवा पशु टीकाकरण

- यदि एक अनजान/आवारा कुत्ता आपके पास से गुजर रहा हो, तो रुक जायें व स्थिर खड़े रहें।
- कुत्ते के भोजन करते व पानी पीते समय उसको परेशान न करें और निकट भी न जायें।
- बूढ़े व घायल कुत्ते के निकट न जायें।
- जब कुत्ता अपने बच्चों के साथ हो, उसके निकट न जायें।
- जब कुत्ते लड़ रहे हों, उन्हें अलग करने की कोशिश न करें।
- पालतू कुत्ते को एंटीरेबीज का टीका अवश्य लगवायें।

कुत्ते के काटने पर क्या न करें..

- कटे स्थान पर लाल मिर्च, कॉफी पाउडर, गीली मिट्टी, गोबर आदि न लगायें।
- कपड़ा, पट्टी आदि न बांधें।
- कटे स्थान को ताजा बहते पानी में फिनोलयुक्त लाल साबुन से 15 मिनट तक धोयें।
- घाव पर एंटीसेप्टिक घोल लगायें।
- एंटीरेबीज वैक्सीन की चार या पांच खुराक का पूरा कोर्स लगवायें। यदि घाव ठीक हो जाये तब भी।
- कुत्ते द्वारा काटे जाने पर तुरंत चिकित्सक से परामर्श करें।

मनुष्य में रेबीज के लक्षण

मनुष्य में रेबीज के लक्षण आमतौर पर जानवरों के द्वारा दिखाए गए लक्षण से कुछ भिन्न होते हैं। पेट में दर्द, चिंता, बेचैनी, बढ़ती आक्रामकता, हर चीज को काटने की कोशिश करना, बुखार, गले में खराश और खांसी, पानी से दूर रहने की प्रवृति, अत्यधिक लार का बहना, प्रलाप, दर्दनाक मांसपेशियों की ऐंठन, आंशिक या पूर्ण पक्षाघात, कोमा, इत्यादि मनुष्य में रेबीज के आम लक्षण हैं। इनमें से कुछ लक्षण रेबीज के लिए विशिष्ट नहीं हैं।

मनुष्य में रोग नियंत्रण एवं उपचार

लक्षण प्रकट होने के बाद रेबीज 100 प्रतिशत घातक रोग है। कुत्ते या अन्य जानवर के काटने के बाद इसको रोकने का एक मात्र उपाय तुरंत टीकाकरण (पोस्टएक्सपोजर वैक्सीनेशन) है। रेबीज से ग्रसित जानवर द्वारा काटे जाने पर घबराना नहीं चाहिए, और न ही अनदेखा करना चाहिए। घाव को फिनोलयुक्त लाल साबुन व पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए व उसके बाद एंटीसेप्टिक टीका लगवाना चाहिए। जहां तक हो सके, काटे हुए भाग में टांके न लगवायें। टिंचर जैसे टिंचर आयोडीन, ल्युगाल आयोडीन, आदि लगाना चाहिए। टिटेनस का टीका या एंटीबायोटिक का प्रयोग भी किया जा सकता है। कुत्ते के काटने पर दर्द तथा सूजन काफी होती है। दर्द निवारक तथा सूजन को कम करने वाली दवा देनी भी आवश्यक है। उस पागल कुत्ते अथवा जानवर को बांधकर 14 दिनों तक

कुत्ते के आक्रमण से रहें दूर

उसके व्यवहार में परिवर्तन, पागलपन तथा मृत्यु के लिए निरीक्षण करें। उसके मालिक का पता और फोन नम्बर रखना चाहिए। रेबीज का टीकाकरण अनिवार्य है। पागल पशु द्वारा काटे गए मनुष्य में तुरंत बचाव के लिए टीके लगवाएं (काटे गए दिनों पर व फिर 3, 7, 14, 28 व 90 दिनों बाद बांह में टीका लगवाएं)।

मनुष्य का प्री एक्सपोजर टीकाकरण

आमतौर पर जो व्यक्ति पशुओं के संपर्क में रहते हैं जैसे कि पशुचिकित्सक, पशुपालक, अनुसंधानकर्ता खासतौर से विकृति वैज्ञानिक या रोग निदान से संबंधित पशुकर्मी/चिकित्सक आदि को प्री एक्सपोजर टीका लेना चाहिए। जिन लोगों में पूर्व प्रतिरक्षक रेबीज का टीका निर्धारित समय से लगा हो तो रोगग्रसित पशु के काटने पर बूस्टर टीका अवश्य लगवाएं। ग्रामीण क्षेत्रों में व बिना पढ़े-लिखे लोगों को कुत्ते काटे के घाव में मिर्च, तेल हल्दी आदि भरते देखा जाता है, ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए इससे वायरस तेजी से फैलता है।

रेबीज की रोकथाम की हम सभी नागरिकों की भी जिम्मेदारी बनती है। यह भारत में एक गंभीर समस्या है तथा सारे पशु प्रेमियों को एकजुट होकर इसको हराने के लिए प्रयास करने चाहिए। रेबीज के बारे में जागरुकता रेडियो, टीवी तथा सोशल मीडिया के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाई जानी चाहिए। कुत्तों की आबादी पर कारगर रूप से अंकुश लगाया जाए। इन सबके लिए एक सोच बनानी होगी सरकार में और जनमानस में भी। एकीकृत प्रयासों के तहत कुत्तों की नसबंदी, कुत्तों का वेक्सिनेशन और जागरुकता फैलाने के कार्य करने होंगे। तभी हम रेबीजमुक्त भारत के अपने सपने को पूरा कर सकेंगे।

यदि आपके पास कोई पालतू जानवर न हो तब भी, अनजाने में ही आवारा कुत्तों को कुछ खाने को देकर या रिहायशी इलाकों में कूड़ा कचरा डालकर आप भी रेबीज के प्रसार में योगदान करते हैं। अपने पालतू कुत्ते को नियमित टीका लगवायें। आवारा कुत्तों को खाना देकर रिहायशी इलाकों में कूड़ा-कचरा डालकर रेबीज का प्रसार न करें। आवारा कुत्तों संबंधित समस्याओं से नगर महापालिका को अवगत करायें। अपने परिवार और मित्रों को इस बारे में जानकारी दें। सामाजिक जागरुकता हमारे देश से रेबीज की समाप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने में योगदान करेगी। यह योगदान अनेक अमूल्य जीवन बचाने में सहायक सिद्ध होगा। रेबीज के बारे में अपेक्षित एवं पर्याप्त जानकारी के लिए अपने निकटतम पशु चिकित्सा अधिकारी से सम्पर्क करें। विस्तृत जानकारी के लिए पशुपालक निकटतम पशु चिकित्सालय, पशु अनुसंधान संस्थानों व पशु विश्वविद्यालयों से भी सम्पर्क कर सकते हैं।

रेबीज है क्या

रेबीज एक घातक विषाणुजनित जानलेवा रोग है। इसे जलोतक, फड़किया, पागलपन तथा अंग्रेजी में रेबीज भी कहते हैं। यह रोग मनुष्य एवं पशुओं के केंद्रीय स्नायु तंत्र को प्रभावित करता है। यह स्तनधारी जीवों में पाया जाता है। रेबीज तीन रूप में पाया जाता है। 'वन्यजीव रेबीज' (सिलवेटिक रेबीज)-यह वन्यजीव जैसे लोमड़ी, भेड़िया, सियार आदि जीवों में पाया जाता है, 'नगरीय रेबीज' (अर्बन रेबीज) तथा 'चमगादड़ रेबीज'। मनुष्य प्राय: रेबीज ग्रसित 'वन्यजीव रेबीज' के काटने से प्रभावित होते हैं। यह

विषाणु पागल कुत्ते (मुख्यत:), बिल्ली, बन्दर, नेवला, सियार व लोमड़ी की लार में पाया जाता है। उचित प्रभावी टीका होने के बाद भी इस रोग ने विश्व में भारी क्षति व तबाही मचा रखी है। रेबीज का विषाणु प्रभावित जानवर की लार और मस्तिष्क में पाया जाता है। यह घाव के माध्यम से अथवा आंख, नाक व मुंह की श्लेष्मा झिल्ली में प्रवेश करके भी फैलता है। यह विषाणु सामान्य त्वचा को पार नहीं कर सकता। घाव मस्तिष्क के जितना पास होता है, रोग के लक्षण उतनी ही जल्दी प्रकट होते हैं। यह केन्द्रीय स्नायुतंत्र को नष्ट कर सारे शरीर में फैल जाता है। रोग के लक्षण प्रकट होने पर प्रभावित रोगी मानव एवं पशु की मृत्यु निश्चित है। रेबीज की समस्या सिर्फ पशुओं तक ही सीमित नहीं, संक्रमित पशु का दूध पीने से मानव पर भी स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने की खबरें सामने आई हैं।

IFFCO

पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

1967 2017
स्वर्ण जयंती
Golden Jubilee

इफको के स्वर्णिम 50 वर्ष

कृषि, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास को समर्पित

नीम लेपित यूरिया | एन पी के | डी ए पी | एन पी | बॉयो फर्टिलाइजर

वॉटर सोल्यूबल फर्टिलाइजर | माईक्रो न्यूट्रीएन्ट फर्टिलाइजर

Follow us :

YouTube IFFCO live
iffcolive.com

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED

IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

थ्रेशर का रखरखाव और सावधानियां

एच.एल. कुशवाहा, आदर्श कुमार और **देवेश कुमार**
कृषि अभियांत्रिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

" भारत में गहाई (थ्रेशिंग) का काफी हद तक मशीनीकरण हो चुका है। मार्च-अप्रैल में थ्रेशिंग मशीनों का उपयोग बड़ी संख्या में भारतीय खेत-खलिहानों में किया जाता है। गेहूं और सरसों की फसल पकने की स्थिति में आने पर उसकी कटाई के उपरांत थ्रेशरों का इस्तेमाल किया जाता है। इस लेख में किसानों के लिए कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं, इनका ध्यान रखने पर वे अच्छी मशीनों का चयन कर सकते हैं। चयन के पूर्व चलाने के समय और मशीन प्रचालन के बाद की बातों का ध्यान रख सकते हैं। इस प्रकार मशीन पूर्ण समय सुचारू रूप से तथा लंबे समय तक काम करेगी तथा इससे किसानों को लाभ होगा। मशीनों के रखरखाव एवं प्रचालन प्रक्रिया में किसी प्रकार के समय की हानि नहीं होगी। "

थ्रेशर का चयन

- **गुणवत्ता:** थ्रेशर खरीदते समय गुणवत्ता का ध्यान रखें, प्रयास रहे कि बीआईएस प्रमाणित थ्रेशर मशीन ही खरीदी जाए। इससे गुणवत्ता एवं सुरक्षा दोनों ही सुनिश्चित हो जाती हैं।
- **क्षमता:** आवश्यकता के अनुसार मशीन क्षमता निर्धारित करें और उसी के अनुसार मशीन क्रय करें। थ्रेशर की क्षमता न केवल अपने इस्तेमाल के लिए तथा अपितु किराये पर चलने पर भी निर्भर करती है।
- **मूल्य:** किसानों को अपनी आर्थिक क्षमता, अनुदान की राशि एवं बैंक के कर्ज की राशि एवं सुविधा के अनुसार मशीन की कीमत में सामंजस्य बनाते हुए खरीददारी करनी चाहिए।
- **उपलब्धता:** मशीन की उपलब्धता (डीलर) किसान के क्षेत्र में होने से इससे मरम्मत, सर्विसिंग एवं स्पेयर पार्ट्स मिलने में आसानी हो जाती है। किसान को इन सब कार्यों को करवाने के लिए बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं रहती है। इससे इन कार्यों को करवाने के लिए अधिक समय की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- **शक्ति स्रोत:** किसान अपने पास उपलब्ध शक्ति स्रोत के अनुसार मशीन का चयन कर सकते हैं। इससे लागत में कमी आयेगी और उपलब्ध स्रोत का इस्तेमाल दक्षता के साथ होगा।
- **फसल चक्र:** मशीन फसल चक्र के अनुसार खरीदनी चाहिए। उसी के अनुसार थ्रेशर का चयन करना चाहिए। अगर एक से अधिक फसल के लिए थ्रेशर खरीदना है तो बहुफसली थ्रेशर (मल्टी क्रॉप मशीन) को खरीदा जा सकता है।

बिजली के मोटर या इंजन से चलने वाला थ्रेशर

थ्रेशर मशीन की स्थापना

- **सिलेण्डर की गति:** थ्रेशर सिलेण्डर के घूमने की दिशा को भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए। थ्रेशर सिलेण्डर के घूमने की गति के अनुसार शक्ति स्रोत से पट्टे का जुड़ाव करना चाहिए। ट्रैक्टर के पीटीओ-आरपीएम भी देख लेने चाहिए। अगर किसान पीटीओ से शक्ति का उपयोग कर रहे हैं, तो ट्रैक्टर का पीटीओ-आरपीएम (540/1000) के अनुसार पुली का चुनाव करना चाहिए।
- **फसल स्थिति:** थ्रेशिंग के समय पूरी फसल सूखी होती है तथा अत्यंत

ज्वलनशील भी होती है। इस लिए किसी प्रकार की दुर्घटना को रोकने के लिए एक पानी का ड्रम रखना चाहिए, जो कि आग लगने की स्थिति में काफी उपयोगी होगा।

- **मशीन की स्थिरता:** थ्रेशर समतल स्तर पर रखें, इससे कार्य करते समय मशीन हिले-डुले नहीं। स्थिरता के लिए टायरों के दोनों तरफ ईंटें लगायी जा सकती हैं। इसमें खड़े करने वाले स्टैंड का प्रयोग भी किया जा सकता है। थ्रेशर की स्थापना हमेशा ऊंचाई वाले स्थान पर ही करनी चाहिए। स्थापना करते समय हवा के बहाव का ध्यान रखना चाहिए। इससे कार्य करने वाले व्यक्तियों पर भूसा पड़ने से बचाव हो जाता है।
- **थ्रेशर की पुली एवं शक्ति स्रोत:** ये दोनों एक लाईन में होनी चाहिए, जिससे कि पट्टे के उतरने की समस्या नहीं होगी। पट्टे का तनाव ठीक होना चाहिए, इसकी भी सुनिश्चितता कर लेनी चाहिए।
- **प्राथमिक उपचार:** जहां पर भी थ्रेशर से कार्य किया जा रहा हो, प्राथमिक उपचार के साधनों को पास में रखना चाहिए ताकि दुर्घटना के समय सहायता मिल सके। उदाहरणस्वरूप कुछ दवाइयां, साफ कपड़ा, रूई, साफ पानी इत्यादि का उपयोग चोट लगने पर बहुत महत्वपूर्ण है। इससे चोट की गंभीरता को कम किया जा सकता है।
- **थ्रेशर पर खड़े होने वाले प्लेटफार्म:** थ्रेशर पर कार्य करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि जो व्यक्ति पतनाले में फसल डाल रहा है, वह एक समतल एव सुदृढ़ प्लेटफार्म पर खड़ा है इससे हिलने-डुलने की आशंका नहीं होती है और व्यक्ति सुचारू एवं सुरक्षित रूप से कार्य कर सकता है।

थ्रेशर चलाते समय सावधानियां

- फसल में नमी उपयुक्त होनी चाहिए। इससे थ्रेशिंग ठीक प्रकार से होगी तथा दानों को कोई हानि नहीं होगी।
- समान रूप से फसल डालें। इससे थ्रेशिंग अच्छी होगी तथा दानों के टूटने तथा भूसे के साथ उड़ने या बिना गहाई (अनथ्रेश) दानों में कमी आयेगी।
- थ्रेशर को इस तरह खड़ा करें कि भूसा हवा की दिशा में जाये। इससे कार्य करने वाले व्यक्ति के ऊपर भूसा नहीं पड़ेगा तथा एक स्थान पर एकत्र हो जायेगा। कोई भी व्यक्ति नशे, रोग, थकावट की स्थिति में थ्रेशर पर कार्य न करे। इससे दुर्घटना की आशंका बढ़ जाती है। थ्रेशर पर कार्य करने वाले व्यक्ति के कपड़े ढीले नहीं होने चाहिए अन्यथा थ्रेशर के घूमने वाले हिस्से में फंस जाने की आशंका रहती है और चोट लग सकती है। इसलिए ध्यान रखें कि रोशनी पर्याप्त हो जिससे दुर्घटना होने की आशंका कम हो जाए। फसल ज्वलनशील होती है और ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी प्रकार की चिंगारी चाहे वह ट्रैक्टर के एग्जास्ट से या बिजली की तारों से या धूम्रपान इत्यादि से नहीं होनी चाहिए।
- जब फसल में छोटे टुकड़े बच जाते हैं, तब उन्हें हाथ से धकेलने के स्थान पर उन्हे लकड़ी या बांस के (T) आकार के उपकरण से धकेलना चाहिए। ऐसा देखा गया है कि फसल के छोटे टुकड़ों को धकेलते समय हाथ थ्रेशिंग सिलेंडर के बहुत निकट आ जाता है। इससे दुर्घटनाओं के होने की आशंका बढ़ जाती है। इसलिए अगर छोटा उपकरण (T आकार) का बना लिया जाये और

थ्रेशर उपयोग में सुरक्षा

- मशीन और उनके कलपुर्जे ठीक हों, घूमने वाले हिस्से पर कवर या ढक्कन लगा हो। मशीन समतल स्थान पर स्थिर हो। खड़े होने वाले प्लेटफार्म सुदृढ़ और समतल हों। पतनाले की लंबाई प्रमाणित मापदंडों के अनुसार हो। कार्य करने वाले व्यक्ति स्वस्थ्य हों, थके न हों, नशे की अवस्था में न हों एवं अनिद्रा से पीड़ित न हों।

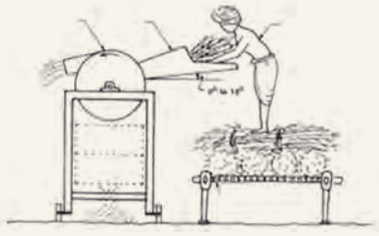

असुरक्षात्मक प्रयोग

- अगर कार्य रात में कर रहे हैं तो प्रकाश पर्याप्त होना चाहिए। खुली लौ वाले दीपक के प्रयोग से बचना चाहिए।
- शक्ति स्रोत की गति स्थिर हो, उदाहरण के लिए अगर बिजली के वोल्टेज में बहुत ज्यादा बदलाव है तो इससे थ्रेशर ड्रम की गति पर प्रभाव पड़ता है, जो कि फसल को जल्दी से खींचता है, जिससे चोट लगने की आशंका बढ़ जाती है।

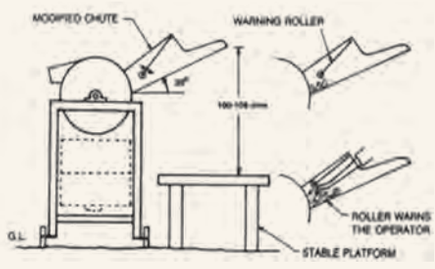

सुरक्षित थ्रेशर

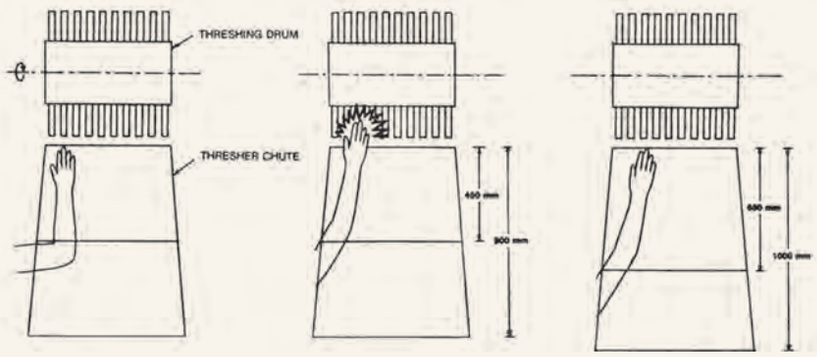

दुर्घटना से बचाव के लिए पतनाले का आकार

- विभिन्न राज्यों की अनाज मण्डियों में कृषि संबंधी कार्यों में लगी चोटों के लिए मुआवजे का प्रावधान है। दुर्घटना होने की स्थिति में चोट लगने के बाद अनाज मण्डियों से सम्पर्क करने से आर्थिक सहायता मिल सकती है।

ट्रैक्टर पीटीओ से चलने वाला थ्रेशर

उससे छोटे टुकड़ों को धकेला जाये तो दुर्घटना को रोका जा सकता है।

थ्रेशर के कार्य करने के उपरांत की सावधानियां

- **साफ-सफाई:** थ्रेशर की अच्छी तरह से सफाई करें, जो फसल के अवशेष बच गए हैं, उनको पूर्ण रूप से निकाल दें। अगर समय हो तो धुलाई करें कुछ समय धूप में सुखायें जिससे नमी या पानी न बचे।
- **कलपुर्जों का निरीक्षण:** पूरी मशीन के कलपुर्जों को अच्छी तरह से देख लेना चाहिए। जहां कहीं भी कमी हो उसको ठीक कर देना चाहिए। जैसे कि अगर नट-बोल्ट ढीले हों तो उनको कस देना चाहिए। अगर नट-बोल्ट निकल गए हैं तो नये लगाने चाहिए। ग्रीस कप में, बियरिंग, पुली में ग्रीस तथा तेल डाल देना चाहिए। टूटे-फूटे हिस्सों को बदल दें या उनकी मरम्मत करायें।
- **भंडारण:** भंडारण के लिए जंगरोधक पेन्ट का उपयोग भी कर सकते हैं। मशीनों को लंबे समय तक उपयोग करने के लिए जालियों पर तेल या ग्रीस का लेप किया जा सकता है, जिससे उन पर जंग नहीं लगेगा।
- **कलपुर्जे:** पट्टों और बेल्ट को उतारकर अलग रख देना चाहिए। मशीन को थोड़ा ऊपर उठाकर रखना चाहिए। इसके टायर जमीन से ऊपर होने चाहिए। इससे टायर खराब नहीं होंगे तथा लंबे समय तक कार्य करेंगे। मशीन को किसी छत के नीचे रखें, इससे धूप, वर्षा और मौसम के दुष्प्रभाव से मशीनों का बचाव होगा व अगली फसल के समय कार्य करने के लिए उपयुक्त स्थिति में रहेंगी। अगर छत के नीचे रखने की सुविधा न हो तो पॉलीथीन या तिरपाल से अच्छी तरह ढक कर रखें।

विदेशी मछलियां बढ़ीं, देसी मछलियां संकट में

गंगा और इसकी सहायक नदियों में पिछले कई वर्षों के दौरान विदेशी प्रजाति की मछलियों की संख्या बढ़ने से कतला, रोहू और नैन जैसी देसी प्रजाति की मछलियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के केंद्रीय अंत: स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, (सिफरी, इलाहाबाद केंद्र) के अनुसार मछली की विदेशी प्रजाति खासकर तिलैपिया और थाई मांगुर ने गंगा नदी में पाई जाने वाली प्रमुख देसी मछलियों की प्रजातियों कतला, रोहू और नैन के साथ ही पड़लिन टेंगरा, सिंधी और मांगुर आदि का अस्तित्व खतरे में डाल दिया है। मछली पालन के लिए विदेशों से मछली के बीज लाए जाते हैं और उन्हें गंगा के आसपास के तालाबों में पाला जाता है। मछली पालन के लिए ये मछलियां अच्छी मानी जाती है, क्योंकि यह बहुत तेजी से बढ़ती हैं, लेकिन तालाबों से ये मछलियां गंगा नदी में पहुंच जाती हैं और स्थानीय मछलियों का चारा हड़प करने के साथ ही छोटी मछलियों को भी अपना शिकार बना लेती हैं। हरिद्वार में मछलियां सस्ते दाम पर मिल जाती हैं, इसलिए लोग विदेशी प्रजाति की मछलियां खरीदकर गंगा नदी में छोड़ देते हैं, क्योंकि वहां मछलियों को नदी में छोड़ना शुभ माना जाता है। विदेशी प्रजाति की मछलियों की तादाद तेजी से बढ़ती है। आकार में भी स्थानीय मछलियों के मुकाबले विदेशी मछलियां कहीं बड़ी होती हैं। मत्स्य पालन के लिए ये उपयोगी हो सकती हैं। लेकिन नदी में चले आने से इनसे और भी कई नुकसान होते हैं। ये मछलियां कारखानों से नदी में आने वाले विषैले पदार्थों को भी खा जाती हैं, जिससे इन मछलियों को मानव आहार के तौर पर लेना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के केंद्रीय अंत: स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, सिफरी, इलाहाबाद केंद्र के अनुसार जानकारी के अभाव में गरीब लोग थाई मांगुर और तिलैपिया मछली का भोजन करते हैं, क्योंकि बहुतायत में पैदा होने के चलते इन मछलियों का बाजार भाव कम है।

वहीं दूसरी ओर देसी मछलियों की तादाद कम होने से इनके भाव ऊंचे हैं, जिससे ये सभ्रांत परिवारों की थाली की शोभा बढ़ा रही हैं। थाई मांगुर और तिलैपिया प्रजाति की मछलियां साल में कई बार प्रजनन करती हैं इसलिए इन मछलियों पर नियंत्रण बहुत बड़ी चुनौती है। यहीं फरक्का बैराज के निर्माण के बाद से हिलसा मछली एक बड़ी आबादी की पहुंच से बाहर हो गई है, यह मछली उत्तर भारत में नहीं आ पाती और हुबली नदी तक ही सीमित होकर रह गई है।

अजोला की बढ़ती उपयोगिता

रोहिताश यादव[1], प्रवीण कुमार[2], बी.के. शर्मा[3] और **एस.के. शर्मा[4]**

"अजोला तेजी से बढ़ने वाली एक प्रकार की जलीय फर्न है। यह पानी की सतह पर तैरती रहती है। धान की फसल में नील हरित काई की तरह अजोला को भी हरी खाद के रूप में उगाया जाता है। इस हरी खाद से भूमि की उर्वराशक्ति और उत्पादन में भी बढ़ोतरी होती है। अजोला में शुष्क मात्रा के आधार पर 40-60 प्रतिशत प्रोटीन, 10-15 प्रतिशत खनिज एवं 7-10 प्रतिशत अमीनो अम्ल, जैव सक्रिय पदार्थ पोलिमर्स आदि पाये जाते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की मात्रा अत्यंत कम होती है। अजोला की सतह पर नील हरित शैवाल सहजैविक के रूप में विद्यमान होता है। इस नील हरित शैवाल को एनाबिना अजोली के नाम से जाना जाता है और यह वातावरण से नाइट्रोजन के स्थायीकरण के लिए उत्तरदायी रहता है। अजोला, शैवाल की वृद्धि के लिए आवश्यक कार्बन स्रोत एवं वातावरण प्रदान करता है। इस प्रकार यह अद्वितीय पारस्परिक सहजैविक संबंध अजोला को एक अदभुत पौधे के रूप में विकसित करता है जिसमें कि उच्च मात्रा में प्रोटीन उपलब्ध होता है।"

प्राकृतिक रूप से अजोला उष्ण व गर्म उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। देखने में यह शैवाल से मिलती-जुलती फर्न है और आमतौर पर उथले पानी में अथवा धान के खेत में पाई जाती है। अजोला सस्ता, सुपाच्य एवं पौष्टिक पूरक पशु आहार है। इसे खिलाने से सामान्य आहार खाने वाले पशुओं के दूध में वसा व वसारहित पदार्थ अधिक पाया जाता है। यह पशुओं में बांझपन निवारण में भी उपयोगी है। पशुओं के मूत्र में खून की समस्या फॉस्फोरस की कमी से होती है। पशुओं को अजोला खिलाने से यह कमी दूर हो जाती है। अजोला से पशुओं में कैल्शियम, फॉस्फोरस और लोहे की आवश्यकता की पूर्ति होती है और उनका शारीरिक विकास भी अच्छा होता है। यही नहीं इसमें प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, विटामिन (विटामिन ए, विटामिन बी-12 तथा बीटा-कैरोटीन) एवं खनिज लवण जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटेशियम, आयरन, कॉपर, मैग्नीशियम आदि भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें शुष्क मात्रा के आधार पर 40-60 प्रतिशत

कुक्कुट आहार के रूप में अजोला

[1]विद्यावाचस्पति, जल कृषि विभाग, राष्ट्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुम्बई-400061 [2]स्नातकोत्तर; [3]प्रोफेसर; [4]प्रोफेसर व अधिष्ठाता, जल कृषि विभाग, मात्स्यिकी महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001 (राजस्थान)

प्रोटीन, 10-15 प्रतिशत खनिज एवं 7-10 प्रतिशत अमीनो अम्ल, जैव सक्रिय पदार्थ एवं पॉलीमर्स आदि पाये जाते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की मात्रा कम होती है। अत: इसकी संरचना इसे अत्यंत पौष्टिक एवं असरकारक आदर्श पशु आहार बनाती है। यह गाय, भैंस, भेड़, बकरियों , मुर्गियों आदि के लिए एक आदर्श चारा सिद्ध हो रहा है। दुधारू पशुओं पर किए गए प्रयोगों से साबित होता है कि जब पशुओं को उनके दैनिक आहार के साथ 1.5 से 2 कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन दिया जाता है तो दुग्ध उत्पादन में 15-20 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की जाती है। इसके साथ इसका आहार लेने वाली गाय-भैसों के दूध की गुणवत्ता भी पहले से बेहतर हो जाती है। प्रदेश में मुर्गीपालन व्यवसाय भी प्रचलित है। अजोला बेहद सुपाच्य होता है और यह मुर्गियों का भी पसंदीदा आहार है। कुक्कुट आहार के रूप में अजोला का प्रयोग करने पर ब्रॉयलर पक्षियों के भार तथा अंडा उत्पादन में वृद्धि पाई जाती है। यह मुर्गीपालन करने वाले व्यवसाइयों के लिए बेहद लाभकारी चारा सिद्ध हो रहा है। यही नहीं अजोला को भेड़-बकरियों एवं खरगोश, बत्तखों के आहार के रूप में भी बखूबी इस्तेमाल किया जा सकता है।

पशु बड़े चाव से खाते हैं अजोला

कैसे करें अजोला का उत्पादन

- अजोला का उत्पादन कार्य बहुत ही आसान है। सबसे पहले किसी भी छायादार स्थान पर 2 मीटर लंबा, 2 मीटर चौड़ा तथा 30 सें.मी. गहरा गड्ढा खोदा जाता है।
- पानी के रिसाव को रोकने के लिए इस गड्ढे को प्लास्टिक शीट से ढक देते हैं। जहां तक संभव हो इसके लिए पराबैंगनी किरणरोधी प्लास्टिक शीट का प्रयोग करना चाहिए। प्लास्टिक शीट सिलपोलीन एक पॉलीथीन तारपोलीन है, जो कि प्रकाश की पराबैंगनी किरणों के लिए प्रतिरोधी क्षमता रखती है।

- सीमेंट की टंकी में भी अजोला उगाया जा सकता है और इसके लिए प्लास्टिक शीट बिछाने की आवश्यकता नहीं होती है।
- इसके बाद गड्ढे में 10-15 कि.ग्रा. मिट्टी फैलानी पड़ती है। इसके अलावा 2 कि.ग्रा. गोबर एवं 30 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट 10 लीटर पानी में मिलाकर गड्ढे में डाला जाता है।
- पानी का स्तर 10-12 सें.मी. तक होना चाहिए। इसके बाद 500-1000 ग्राम अजोला कल्चर गड्ढे के पानी में डाल देते हैं।
- पहली बार अजोला का कल्चर किसी प्रतिष्ठित संस्थान जैसे कि प्रदेश में स्थित कृषि विश्वविद्यालय के मृदा सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग से क्रय करना चाहिए। यह बहुत तेजी से बढ़ता है और 10-15 दिनों के अंदर पूरे गड्ढे को ढक लेता है।
- इसके बाद से 1000-1500 ग्राम अजोला प्रतिदिन छलनी या बांस की टोकरी से पानी के ऊपर से बाहर निकाला जा सकता है।
- प्रत्येक सप्ताह एक बार 20 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट और 1 कि.ग्रा. गोबर गड्ढे में डालने से अजोला तेजी से विकसित होता है।
- साफ पानी से धो लेने के बाद 0.5 से 2 कि.ग्रा. अजोला नियमित आहार के साथ पशुओं को खिलाया जा सकता है।

अजोला की विशेषता

- अजोला तेजी से बढ़ने वाली वह जलीय फसल है, जिसका किसान कम खर्च में उत्पादन कर सकता है।
- यह पशुओं के लिए पौष्टिक आहार का अच्छा साधन है। इसके द्वारा किसान की बाहरी आहार की बचत हो सकती है और किसान अपनी आय बढ़ा सकता है।
- इसके उत्पादन के लिए छोटे स्थान की जरूरत होती है।
- अजोला उत्पादन के लिए किसी आधुनिक तकनीकी की जरूरत नहीं होती है। इसलिए हर किसान उत्पादन कर अपनी आय दोगुनी कर सकता है।

नवीन व सस्ती सिंचाई पद्धतियां

दीपक हरि रानडे और **एम.एल. जादव**
अखिल भारतीय शुष्क खेती अनुसंधान परियोजना
राजमाता विजया राजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय परिसर, कृषि महाविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

“शुष्क खेती परियोजना, कृषि महाविद्यालय, इंदौर के अंतर्गत वैज्ञानिकों द्वारा मालवा क्षेत्र के विभिन्न गांवों का भ्रमण करते समय कई प्रकार के अनुभव प्राप्त किए गए। इस क्षेत्र के ज्यादातर किसानों के यहां खेतों में मुख्यत: वर्षा आधारित खेती की जाती है। रबी मौसम के दौरान नलकूपों के माध्यम से चने व गेहूं का उत्पादन किया जाता है। इन्हीं क्षेत्रों में कृषकों द्वारा कई स्थानों पर परियोजना व कृषि विभाग की वित्तीय व तकनीकी सहायता से जल अपवाह को एकत्रित करने के लिए छोटे-बड़े खेत तालाबों का निर्माण किया गया। इस संग्रहित जल से सूखे के दौरान खरीफ की फसलों में सिंचाई का प्रबंध हो जाता है। सिंचाई जल की अतिरिक्त मात्रा से किसानों द्वारा खरीफ व रबी फसलों के अलावा आलू व प्याज जैसी फसल को भी लेना प्रारंभ किया गया। अंतत: इस तालाब निर्माण की तकनीक से किसानों की आय व उपज में वृद्धि हुई है।”

विभिन्न स्थानों पर कृषकों द्वारा इस तालाब की तकनीक से प्रेरित व प्रोत्साहित होकर अपने खर्चे से स्वयं के खेत में तालाबों का निर्माण किया गया। मुख्यत: वर्षा आधारित खेती होने के कारण खेतों से व्यर्थ ही बहकर जाने वाले जल को उचित स्थान पर संग्रहित करने के इस भगीरथी प्रयास के अनुकूल व सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं। इस तालाब निर्माण की प्रक्रिया से कृषकों को सिंचाई के लिए अतिरिक्त जल प्राप्त हुआ है। व्यर्थ बह जाने वाले वर्षाजल से उनके व अन्य खेतों में भूक्षरण से होने वाली हानि भी लगभग नगण्य हो गई है।

इन तालाबों में संग्रहित वर्षा जल को नलकूपों के जल के समन्वय के साथ उपयोग करने से कृषकों के खेतों पर सुखद परिणाम प्राप्त हुए। कई बार यह भी देखा गया है कि इन तालाबों के निर्माण से मात्र इन्हीं किसानों के खेतों पर रबी की फसलें सफलतापूर्वक कम वर्षा वाले वर्षों में भी उगाई गईं। अन्य किसान जो कि मात्र नलकूपों पर निर्भर थे, उनके खेतों में नमी के अभाव में फसलों को बोया ही नहीं जा सका। वर्षा आधारित खेती को सिंचित क्षेत्र में बदलने का प्रयास ही वर्षभर खेती कर उपज उगाने का एकमात्र उपाय है।

मध्य प्रदेश शासन द्वारा एक महत्वपूर्ण परियोजना को कुछ वर्षों पूर्व मालवा क्षेत्र में लागू किया गया है। इसके अंतर्गत नर्मदा नदी के जल को इंदौर जिले से निकलने वाली शिप्रा नदी में डाला जा रहा है। इसके कारण शिप्रा नदी जो कि मात्र एक वर्षा की नदी थी, लगभग पूरे वर्ष पानी से भरी रहती है। इसके लिए शिप्रा नदी के मार्ग में जगह-जगह स्टॉप/डेम, बांध का निर्माण भी किया गया है। मुख्यत: नर्मदा-शिप्रा नदी लिंक परियोजना का

नर्मदा-शिप्रा नदी लिंक परियोजना के क्रियान्वयन से उपलब्ध भरपूर जल

क्रियान्वयन सिंहस्थ 2016 में दर्शनार्थियों को महास्नान जैसे बड़े आयोजनों के लिए भरपूर जल उपलब्ध करवाने के लिए 25 फरवरी 2014 को किया गया। परंतु उसके उपरांत यह परियोजना, शिप्रा नदी के आसपास खासतौर से इंदौर में उज्जैन नदी मार्ग के नजदीक के गांवों के लिए एक अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

अक्सर यह कहा जाता है कि किसान भाई भरपूर सिंचाई जल मिलने के कारण

संग्रहित जल

उसका सदुपयोग करने की जगह खेतों में ज्यादा सिंचाई कर देते हैं। इससे जल का नुकसान होता है। परंतु शुष्क खेती परियोजना के वैज्ञानिकों के दल द्वारा किए गए अध्ययन से विपरीत तथ्य सामने आया। किसानों द्वारा न केवल अपने खेतों को, खासतौर से नदी के पास के खेतों को सीढ़ीदार खेतों में बदलकर सिंचाई जल का उचित प्रबंधन किया गया है, बल्कि इसके साथ ही वर्षाकाल के दौरान जल अपवाह से होने वाले नुकसान को भी कम करने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार वर्षा जल अपवाह से पूर्व में प्रभावित हुए खेतों को इनमें मृदा डालकर समतल बनते हुए नये खेतों में परिवर्तित किया जा रहा है। कई किसानों द्वारा जमीन के नीचे पाइप बिछाकर सिंचाई जल को बचाया जाता है। पूर्व में प्रचलित नालियों के माध्यम से सिंचाई जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने में सिंचाई जल की बहुत बड़ी मात्रा का नुकसान होता था। अक्सर पर्याप्त जल उपलब्ध होने पर किसानों को सूक्ष्म व फव्वारा सिंचाई पद्धतियों को अपनाने की सलाह दी जाती है। वास्तविक रूप में ये पद्धतियां महंगी होने के साथ-साथ इनके संचालन में भी कठिनाइयां आती हैं। इस क्षेत्र के कुछ किसानों द्वारा अपनाई जा रही नवीन व सस्ती सिंचाई पद्धतियों को इन सूक्ष्म व महंगी सिंचाई पद्धतियों के विकल्प के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

इंदौर जिले के सांवेर तहसील के गांव जलौद केऊ व जॉनी में इन पद्धतियों को देखा

कृषि में संग्रहित जल का प्रयोग

गया। सामान्य तौर पर इस क्षेत्र के किसान सोयाबीन उगाने के उपरांत चने व गेहूं के अलावा आलू, प्याज, लहसुन, इत्यादि का उत्पादन करते हैं। इसके उपरांत कई खेतों में सब्जियों का उत्पादन भी किया जा रहा है। सामान्यतौर पर रबी व ग्रीष्मकालीन फसलों में सिंचाई देने के लिए पट्टीदार खेती में सिंचाई की जाती है। इसी प्रकार सब्जियां उगाने के लिए छोटी पट्टियों का इस्तेमाल किया जाता है। जहां गेहूं और चने में इन पट्टियों की चौड़ाई 1.5 से 2 मीटर तक रखी जाती है, वहीं सब्जियों के लिए इन पट्टियों को 0.3 मीटर के अंतराल पर बनाया जाता है। इन सभी पट्टियों का ढलान खेत के ढलान के अनुसार होता है। सामान्यतौर पर पट्टियों में एक सिरे पर नाली से फावड़ों के माध्यम से पानी की दिशा को परिवर्तित कर

वर्षा जल का भंडारण

इन पट्टियों में प्रवाहित किया जाता है। इन पारंपरिक पट्टी सिंचाई पद्धतियों में लगातार कृषक की उपस्थिति आवश्यक रहती है। फावड़े के माध्यम से सिंचाई जल की दिशा में परिवर्तन करना, अगली पट्टी के लिए मार्ग बनाना, सिंचाई होने पर पट्टियों को बंद करना, पट्टियों में बढ़ते पानी की गति पर नियत्रंण करना इत्यादि कार्य करने होते हैं। यदि यह ध्यान न रखा जाए तो नाली में प्रवाहित जल की अनियंत्रित गति के कारण पट्टियों में कटाव होता है। साथ ही कई पट्टियों के अंतिम सिरे पर जल जमाव की स्थिति हो जाती है। इस प्रकार समुचित जल प्रबंधन, समान पट्टियों में समान जल का वितरण, पट्टियों में भूक्षरण न होने देना इत्यादि के लिए कृषक का लगातार खेत में बने रहना अत्यंत आवश्यक है। खासतौर से रबी के दौरान बिजली की उपलब्धता रात्रिकालीन समय में लगातार बनी रहती है। इस समय रात में ठंड के दिनों में खेतों में कार्य करना व सिंचाई जल का व्यवस्थापन करना अत्यंत ही कष्टदायक होता है। इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए कुछ कृषकों द्वारा अभिनव प्रयास किए गए हैं। ग्राम जानी तहसील-सांवेर जिला-इंदौर

पट्टीदार खेतों में प्रभावी, सक्षम, सस्ती पद्धति द्वारा सिंचाई

पाइप के अंतिम सिरे को एक प्लग लगाकर बंद करना

नलयुक्त पाइप को पट्टीदार खेतों के ऊपरी हिस्से में पट्टियों की चौड़ाई में रखना है

इस प्रकिया में एक साथ 20 नालियों में सिंचाई की जाती है और इस पद्धति से भी सूक्ष्म सिंचाई पद्धति का आभास

के कृषक श्री ओम प्रकाश पटेल तथा ग्राम जलोद केऊ तहसील-सांवेर जिला-इंदौर के श्री सुरेन्द्र राठौड़ द्वारा अपनाई जा रही सक्षम, कम लागत तथा प्रभावी पद्धति (पट्टियों खेतों में सिंचाई के लिए) इस प्रकार है:

पी.वी.सी. पाइप का उपयोग

श्री सुरेन्द्र राठौड़, जो कि जलोद केऊ गांव के कृषक हैं, पट्टीदार खेतों में प्रभावी, सक्षम और सस्ती पद्धति द्वारा सिंचाई कर रहे हैं। वह अपने खेतों में सोयाबीन व रबी फसलों के बाद ग्रीष्म ऋतु में सब्जी का उत्पादन कर रहे हैं। खासतौर से बैंगन, मिर्च, बरबटी, धनिया, प्याज इत्यादि का उत्पादन कर अच्छी आय प्राप्त कर रहे हैं। इन सभी सब्जियों की बुआई कर उसमें लगभग 30 सें.मी. के अंतराल पर पट्टियां बनाई जाती हैं। इसके उपरांत इन पट्टियों में सिंचाई की जाती है। सामान्यतौर से पट्टियों में सिंचाई के दौरान होने वाले जल के अपव्यय व पट्टियों को नुकसान से बचाने के लिए इनके द्वारा एक अभिनव प्रयास किया गया। इस पद्धति में 20 फीट लंबा तथा 10 सें.मी. व्यास का एक पी.वी.सी. पाइप प्रयोग किया गया है। इसमें 30-30 सें.मी. के अंतराल पर 12 मि.मी. व्यास के 50 मि.मी. लंबे प्लास्टिक के 10 नल लगाए गए हैं। इसमें वाल्व के माध्यम से नल से निकलने वाली जल की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है। इस पाइप के अंतिम सिरे को एक प्लग लगाकर बंद किया गया। इस नलयुक्त पाइप को पट्टीदार खेतों के ऊपरी हिस्से में पट्टियों की चौड़ाई में रखा जाता है। साथ ही यह व्यवस्था की जाती है कि प्रत्येक नल प्रत्येक पट्टी के बीच में रहे। इस पाइप में लचीले रबर के पाइप के माध्यम से ट्यूबवेल से जोड़कर पानी प्रवाहित किया जाता है। इसके उपरांत प्रत्येक वाल्व को खोलकर पट्टियों में जल प्रवाहित किया जाता है। यह मंद गति से सभी दस पट्टियों में समान रूप से आगे बढ़ता रहता है। पूरी पट्टी में पानी पहुंचने पर वाल्व बंद कर दिया जाता है। इस पद्धति का लाभ यह है कि पानी धीमी गति से बढ़कर पट्टियों को नुकसान नहीं पहुंचाता है। पट्टियों में पानी आगे बढ़ने की गति का अनुमान लगाकर यह तय किया जा सकता है कि पूरी पट्टी में सिंचाई देने के लिए कितना समय लगेगा। वास्तविक रूप से पट्टियों में पहली सिंचाई देते समय ज्यादा समय लगता है, क्योंकि मृदा की सतह सूखी होती है। इसके उपरांत की सिंचाई में पूरी पट्टी में सिंचाई करने के लिए क्रमशः कम समय लगने लगता है। मिट्टी की परत नमीयुक्त होने के कारण पानी के बढ़ने की गति बढ़ जाती है। इस प्रकार पट्टी में सिंचाई का समय ज्ञात होने से किसान को पूरे समय इन पट्टियों में सिंचाई देने के लिए खेत में उपस्थित रहने की आवश्यकता नहीं होती है। पट्टियों में पानी देने व रोकने के लिए फावड़े का इस्तेमाल भी नहीं करना होता है।

इस व्यवस्था से यह ज्ञात होता है कि जल की उपलब्धता बढ़ने के बावजूद किसान न केवल ज्यादा फसलें उगाते हैं, बल्कि जल अपव्यय को बचाने का प्रयास भी करते हैं। वास्तविक रूप से सूक्ष्म सिंचाई पद्धति जैसे ड्रिप या फव्वारा मंहगी होती है। साथ ही इनका रखरखाव भी आसान नहीं होता है। इस प्रकार एक अभिनव व नई पद्धति से पट्टीदार खेती में श्री सुरेन्द्र राठौड़ द्वारा सक्षम व दक्ष सिंचाई पद्धति से जल का अपव्यय रोका गया।

10 सें.मी. व्यास वाले 6 मीटर लंबे रबर के पाइप में 30-30 सें.मी. की दूरी पर कैंची से काटकर 5-5 मि.मी. के छिद्र

कूंड़-नाली सिंचाई पद्धति के लिए लचीले रबर पाइप का उपयोग

ग्राम जानी जिला इंदौर के किसान श्री ओम प्रकाश पटेल ने भी खेतों में कूंड़-नाली सिंचाई पद्धति और सुरक्षित, दक्ष, सक्षम द्वारा कम लागत वाली नवाचार सिंचाई पद्धति को अपनाया जिसके अन्तर्गत वे खेतों के ऊपरी हिस्सों में नाली के स्थान पर एक लचीले रबर पाइप को पट्टियों के ऊपर बिछाते हैं। इस 10 सें.मी. व्यास वाले 6 मीटर लंबे रबर के पाइप में श्री पटेल द्वारा 30-30 सें.मी. की दूरी पर कैंची से काटकर 5-5 मि.मी. के छिद्र बनाये गए हैं। इस रबर के पाइप के अंतिम सिरे को रस्सी से बांधकर बंद कर दिया जाता है। दूसरे सिरे से पी.वी.सी. पाइप के माध्यम से जल प्रवाहित किया जाता है। इस रबर के पाइप में बनाये गए छिद्रों से प्रत्येक नाली में जल प्रवाहित होता है। सिंचाई जल नालियों को सींचते हुए समान रूप से सभी नालियों में आगे बढ़ता है। इन छिद्रों में उनके द्वारा एक पतले कपड़े की पट्टी को भी लगाया जाता है। इससे सभी छिद्रों से समान रूप से जल प्रवाहित करने के लिए समायोजित किया जाता है। इस प्रकार एक साथ 20 नालियों में सिंचाई की जाती है। इस पद्धति से भी सूक्ष्म सिंचाई पद्धति का आभास होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि खेतों में सिंचाई करने के लिए महंगी सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली (टपक एवं फव्वारा) के स्थान पर सस्ती, आसान व सक्षम तरीके से पी.वी.सी. पाइप या रबर के लचीले पाइप से सभी पट्टियों/नालियों में समान रूप से एक साथ सिंचाई कर जल के अपव्यय को रोककर व लगातार उपस्थिति व देखभाल से छुटकारा मिल सकता है।

पौध रोपाई यंत्र की बढ़ती उपयोगिता

सुमन सिंह[1], हेमू राठौड़[2] और चारू शर्मा[3]

"पौध रोपाई के कार्य को आसानी से कम समय में बिना थकावट के हस्तचालित पौध रोपाई यंत्र द्वारा किया जा सकता है। स्टेनलेस स्टील का बना यह पौध रोपाई यंत्र पाइपनुमा होता है। इसका मुंह एक ओर खुला होता है तथा दूसरे छोर पर तिरछा 4 इंच का ढक्कन लगा होता है। यह ऊपर की ओर लीवर से जुड़ा होता है। नीचे ढक्कन लगे छोर को निश्चित गहराई तक रोपाई के लिए तैयार किए स्थान में डाला जाता है। रोपाई यंत्र में मुंह की ओर से पाइप में पौध रोपने के लिए डाला जाता है। लीवर दबाने पर नीचे ढक्कन लगा मुंह खुल जाता है तथा पौध उचित गहराई में रोपा जा सकता है। सब्जियों में बैंगन, मिर्च, टमाटर, फूलगोभी इत्यादि फसलों की पौध तैयार करके पौधों की रोपाई की जाती है। इन फसलों के लिए यह पौध रोपाई यंत्र बहुत सहायक सिद्ध हुआ है।"

रोपाई यंत्र द्वारा पौधरोपण करती महिलाएं

खेती में बुआई का कार्य मशक्कत भरा एवं थकाने वाला होता है। फसलों की बुआई बीज छांटकर, बीज को निश्चित दूरी पर रोपकर अथवा पौध तैयार करके रोपाई द्वारा की जाती है। फसल अनुरूप बुआई का कार्य तय किया जाता है। जिन फसलों की पौध तैयार करके पौधों की रोपाई की जाती है, उनमें पौध रोपाई का कार्य श्रमयुक्त, थका देने वाला, उबाऊ एवं अत्यधिक समय खर्च करने वाला होता है।

पारंपरिक तरीके में एक-एक पौध को रोपने में काफी शारीरिक श्रम एवं अत्यधिक थकान हो जाती है। इसके अलावा प्रत्येक पौध को रोपने में काफी समय लगता है। पौध रोपाई यंत्र का प्रयोग करके शारीरिक श्रम एवं समय की बचत होती है। इसके अलावा पारंपरिक तरीके से यंत्रवत एक-एक पौध को रोपने से होने वाली अनावश्यक थकान से भी बचा जा सकता है। साथ ही बार-बार झुककर पौध रोपने से होने वाले कमर दर्द से भी कृषक को राहत मिलती है।

पारंपरिक रोपाई कार्य में एक डोली (16 मीटर) में 35 पौधों की रोपाई में जहां 6 मिनट का समय लगता है। इसके अतिरिक्त इस विधि में 35 बार 110 डिग्री पर कमर झुकाकर रोपाई का कार्य किया जाता है। वहीं पौध रोपाई यंत्र से लगभग आधे समय में बिना झुके काम पूरा हो जाता है। इस प्रकार पारंपरिक तरीके की तुलना में पौध रोपाई यंत्र थकान से काफी हद तक बचाता है।

पौध रोपाई यंत्र का प्रयोग काफी आसान है। इसमें किसी प्रकार की तकनीकी दक्षता की आवयकता नहीं होती है। पारंपरिक रोपाई की तुलना में इस यंत्र से बिना थकान के सरलता एवं सुगमतापूर्वक रोपाई का कार्य किया जा सकता है। इस प्रकार यह यंत्र समय एवं श्रम की बचत करते हुए थकान दूर करने में सहायक है। यंत्र द्वारा रोपाई से हाथों की सुरक्षा भी होती है। इससे कमर दर्द से निजात मिलती है। इन सबके अतिरिक्त पौध रोपाई यंत्र उचित गहराई में पौध रोपाई का कार्य भी कर देता है। इससे बार-बार निश्चित दूरी पर पौध के लिए गड्ढा खोदने का श्रम भी नहीं करना पड़ता, साथ ही पौधों के मरने की संख्या भी नगण्य हो जाती है।

पौध रोपाई यंत्र

यांत्रिक पौधरोपण

कम श्रम एवं समय में निपुणता से रोपाई का कार्य करने के लिए पौध रोपाई यंत्र काफी कारगर है। यह पौध रोपाई यंत्र 3800 रुपये का है। इसे प्राप्त करने के लिए अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, पारिवारिक संसाधन प्रबंध विभाग, गृहविज्ञान महाविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान) से संपर्क कर सकते हैं।

[1]प्राध्यापक; [2]सहायक प्राध्यापक, पारिवारिक संसाधन प्रबंध विभाग, गृहविज्ञान महाविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान); [3]विषय विशेषज्ञ, गृहविज्ञान, कृषि विज्ञान केंद्र, पोकरण, जैसलमेर (राजस्थान)

मूंग उत्पादन बढ़ाने की उन्नत तकनीकें

वाई.पी. सिंह[1] और **सुधीर सिंह**[2]
रा.वि.सि. कृषि विश्वविद्यालय, आंचलिक कृषि अनुसंधान केन्द्र, मुरैना-476001 (मध्य प्रदेश)

" देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में मूंग की खेती सभी ऋतुओं में की जाती है। मूंग की फसल पर जैविक एवं अजैविक कारकों के प्रभावों के कारण उत्पादन में अस्थिरता बनी रहती है। इस फसल में उन्नत तकनीकों का समावेश कर जैविक एवं अजैविक कारकों के प्रभावों को कम किया जा सकता है। इस केन्द्र द्वारा कृषक प्रक्षेत्रों पर वैज्ञानिक तकनीक से लगाए गए प्रदर्शनों में मूंग की उपज औसतन 939 कि.ग्रा./हैक्टर जबकि कृषक पद्धति में औसतन 700 कि.ग्रा./हैक्टर ही प्राप्त हुई। अत: वैज्ञानिक तकनीक से मूंग की खेती कर अधिक उत्पादन, लाभ एवं मृदा उर्वरा क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है। "

मूंग *(विग्ना रेडिएटा)* एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है, जो कि अल्प अवधि एवं कम खर्च में उत्पादन, नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं मृदा उर्वरता में वृद्धि करती है। मूंग की फसल को देश के बहुत से क्षेत्रों एवं फसल पद्धतियों में सम्मिलित किया गया है। साथ ही इसका शाकाहारी भोजन में महत्वपूर्ण योगदान है। मूंग में प्रोटीन की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसकी प्रोटीन की पाचकता अधिक होती है। विश्व के कुल मूंग क्षेत्रफल का भारत में 65 प्रतिशत क्षेत्रफल है। हमारे देश में विश्व के कुल मूंग उत्पादन का 54 प्रतिशत प्राप्त होता है। मूंग को देश के विभिन्न मौसमों में उगाया जाता है, जबकि सर्वाधिक क्षेत्रफल में खरीफ के मौसम में उगाया जाता है। इसके पौधे लचीली आकृति, आकार, ऋतु जैविकी और शीघ्र परिपक्वता (60 दिवस) की विशेषता से युक्त होते हैं। इस कारण इस फसल को रिले, केच एवं अंतरवर्ती फसल के लिए उपयुक्त माना जाता है। इसे एकल फसल के रूप में, रिले पद्धति में धान-परती क्षेत्रों एवं आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और ओडिशा में रबी के मौसम में एवं बसंत, ग्रीष्म ऋतु में केच फसल के रूप में देश के उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, पंजाब, हरियाणा राज्य के सम्पूर्ण भाग एवं मध्य प्रदेश व राजस्थान के कुछ भागों में उगाया जाता है।

मूंग के दानों में लगभग 25 से 28 प्रतिशत प्रोटीन, 1.0 से 1.5 प्रतिशत तेल, 3.5 से 4.5 प्रतिशत रेशा, 4.5 से 5.5 प्रतिशत राख

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]अनुबंधित शिक्षक, कृषि कॉलेज, ग्वालियर-474002 (मध्य प्रदेश)

(ऐश) और 62 से 65 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट शुष्क भार के आधार पर पाया जाता है। सामान्यत: सभी दलहनी फसलों में अमीनो अम्ल के संगठको में सल्फर के अमीनो अम्ल मेथिओनाइन और सिस्टीन कम मात्रा में पाए जाते हैं। मूंग में मेथिओनाइन का सांद्रण अधिक पाया जाता है। विगत तीन दशकों में मूंग के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। फसल के क्षेत्रफल में बढ़ोतरी ताप सहनशील एवं वर्ष के किसी भी मौसम में खेती होने के कारण होती है। खरीफ की फसलों के अधिकांशत: वर्षा आधारित होने के कारण क्षेत्रफल एवं उत्पादन में काफी उतार चढ़ाव होते हैं।

प्रजातियों का विकास

विगत दो दशकों में प्रजातियों के विकास में मुख्य रूप से पीतशिरा मोजैक विषाणु और चूर्णिल आसिता प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया गया। ये उत्पादन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

फसल की बुआई एवं तकनीकी

मूंग की पीतशिरा विषाणु रोग प्रतिरोधी किस्म टीजेएम-3 का चयन कर बीज उपचार सर्वप्रथम वाविस्टीन 1.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज से करने के उपरांत, राईजोबियम तथा पीएसबी कल्चर का प्रयोग 10 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुआई जुलाई के दूसरे सप्ताह में किया गया। उर्वरकों में यूरिया, सिंगल सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश व जिंक सल्फेट का प्रयोग मृदा जांच की संस्तुति के अनुसार किया गया। कृषक पद्धति में उर्वरकों का प्रयोग छिटकवां विधि से कर बीज की बुआई सिंगल बॉक्स सीड ड्रिल द्वारा लाइनों में की गई। उन्नत तकनीक में चौड़ी बेड सीड कम फर्टीलाइजर ड्रिल द्वारा उन्नत प्रजाति एवं उर्वरक प्रयोग कर की गई। खरपतवार नियंत्रण इमेजाथापर 60 से 70 ग्राम सक्रिय तत्व/हैक्टर का प्रयोग फसल की 20 दिनों की अवस्था में किया गया। मूंग में विभिन्न रस चूसक कीटों जैसे माहो सफेद मक्खी, जैसिड के प्रकोप से बचाव के लिए मिथाइल डेमाटोन 25 ई.सी. दवा की 800 एमएल मात्रा का 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया गया। फसल के फूल आने पर फ्लाई बीटल और फलीछेदक कीट के प्रभाव से बचने के लिए ट्राइजोफॉस 40 ई.सी. 800 एम.एल का 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव किया गया। सिंचाई, सूखे की स्थिति में फूल आने से पूर्व व फली निर्माण के समय आवश्यकता पड़ने पर की गई। परिपक्व अवस्था में फसल की कटाई सितंबर के आखिरी सप्ताह से अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में की गई।

चौड़ी क्यारियों में सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल द्वारा बुआई

सारणी 1. मूंग की फसल पर लगाए गए नवीनतम तकनीक पर आधारित प्रदर्शनों का उपज एवं आर्थिकी पर प्रभाव (वर्ष 2010-2011 से 2014-15 का औसत)

तकनीक	कुल संख्या	उपज (कि.ग्रा./हैक्टर)		आर्थिकी (रुपये/हैक्टर)		लाभ लागत अनुपात
		दान	भूसा (डंठल)	लागत	शुद्ध लाभ	
कृषक पद्धति	65	700	1428	15226	17255	2.1
उन्नत तकनीक*	65	939	1897	16210	27533	2.7

*पीतशिरा मोजैक विषाणु प्रतिरोधी प्रजाति + मृदा जांच के आधार पर उर्वरक प्रयोग एवं बेड पद्धति से फसल बुआई

उपज एवं आर्थिकी पर प्रदर्शनों का प्रभाव

मूंग के प्रदर्शनों में विगत पांच वर्षों के औसत के आधार पर अधिक उपज देने वाली पीतशिरा मोजैक विषाणु रोग प्रतिरोधी उन्नत प्रजाति, मृदा जांच के आधार पर उर्वरक प्रयोग एवं चौड़े बेड पर बुआई करने पर दानों की उपज में 34.1 प्रतिशत की वृद्धि कृषक पद्धति की उपज (700 कि.ग्रा./हैक्टर) की तुलना में हुई (सारणी-1)। आर्थिक विश्लेषण करने पर स्पष्ट है, उन्नत तकनीक के प्रयोग से 10,280 रुपये/हैक्टर का अतिरिक्त शुद्ध लाभ, नियंत्रण के कुल शुद्ध लाभ 17,255 रुपये/हैक्टर की तुलना में हुआ। इसी प्रकार लाभ-लागत अनुपात प्रदर्शन 2:7 रहा जबकि कृषक पद्धति में यह 2:1 ही था।

नवीनतम तकनीकी प्रदर्शनों के प्रभाव

चयनित प्रदर्शन के प्रक्षेत्र की मृदाएं एल्युविल एवं इनकी संरचना बलुई दोमट थी। जिन क्षेत्रों में प्रदर्शन आयोजित किए गए वहां पर रबी की फसल काटने के उपरांत कृषकों का चयन कर मृदा नमूने एकत्रित किए गए। मृदा परीक्षण प्रयोगशाला से प्राप्त परिणामों की मृदा का औसतन पी-एच मान 7.82 और विद्युत चालकता 0.31 डी.एस./मी. थी। मृदा में कार्बनिक पदार्थ-2.81 ग्राम/कि.ग्रा., उपलब्ध नाइट्रोजन-182 कि.ग्रा./हैक्टर, फॉस्फोरस-9.9 कि.ग्रा./हैक्टर, पोटाश-221 कि.ग्रा./हैक्टर, सल्फर-8.4 कि.ग्रा./हैक्टर व जस्ते की मात्रा 0.58 मि.ग्रा./कि.ग्रा. थी। मृदा जांच के परिणामों के अनुसार मृदा की प्रकृति उदासीन थी एवं उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर व जस्ते की कमी एवं पोटाश का स्तर मध्यम था। मूंग फसल के प्रथम पंक्ति प्रदर्शन वर्ष 2010 से 2015 के मध्य कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना द्वारा आयोजित किए गए। क्षेत्र का तापमान न्यूनतम 1^0 सेल्सियस एवं अधिकतम 49^0 सेल्सियस तक जाता है। जलवायु संबंधी फसल के उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों में फसल की आरंभ की अवस्था में जल भराव, फूल व फली की अवस्था में कभी-कभी सूखे का प्रभाव एवं अधिक नमी व आर्द्रता के कारण पीतशिरा मोजैक विषाणु रोग के प्रकोप का उलेख किया जा सकता है।

उत्पादन में बाधाएं

मूंग की फसल की उत्पादन एवं उत्पादकता की धीमी विकास दर के निम्न कारण हैं:

- इस फसल को खरीफ मौसम में कीट-व्याधियों से अधिक नुकसान होता है। फसल की कलिकायन अवस्था में कीट-व्याधियों का अधिक प्रकोप होने लगता है और फूल बनने तक काफी नुकसान होता है एवं फूल गिरने लगते हैं।
- उत्तर भारत में खरीफ और बसंत ऋतु में पीतशिरा मोजैक विषाणु और देश के दक्षिणी भाग में शीत ऋतु में चूर्णिल आसिता रोग का प्रकोप होता है।
- फसल को व्यावसायिक रूप देने के लिए अधिक उत्पादन (1.5 से 2.0 टन/हैक्टर) ताप एवं कीट व्याधि सहनशील, एक साथ एवं शीघ्र परिपक्वता और अधिक उपज क्षमता की प्रजातियों की आवश्यकता है।
- मानसूनी वर्षा के आरंभ में बुआई से सामान्यत: फसल पकने पर वर्षा होने और फली में दानों का पुन: फुटान होने के कारण अंतरवर्ती फसल जैसे मक्का, मूंग, ज्वार, आदि के साथ फसल नहीं लगा सकते।
- प्रक्षेत्रों पर भंडारण की सुविधा न होने के कारण भंडारण में ब्रूचिड कीट द्वारा अधिक नुकसान होता है। इस कीट से प्रतिरोधी प्रजाति की अनुपलब्धता है।
- दलहन उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों के वाबजूद बीज प्रतिस्थापन दर 10 प्रतिशत से कम है। वैज्ञानिकों द्वारा ऐसा माना जाता है कि गुणवत्तायुक्त उन्नत बीज उपलब्ध होने पर 20 प्रतिशत दलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

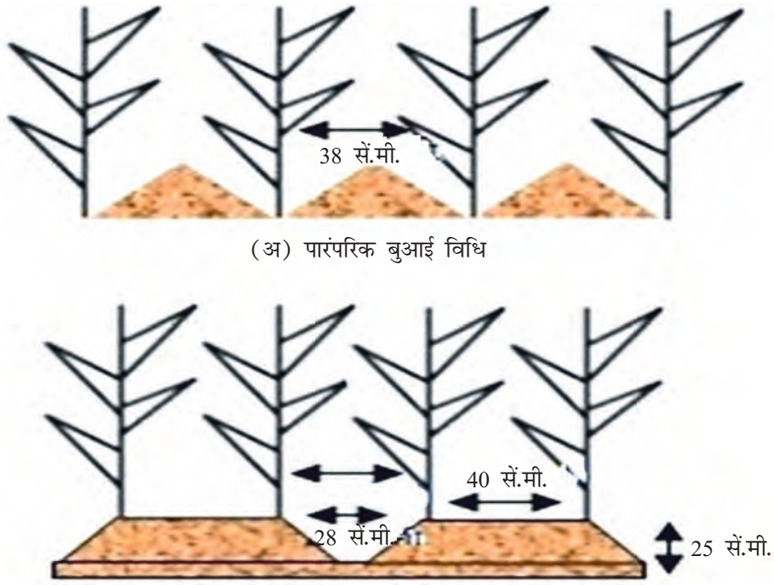

(अ) पारंपरिक बुआई विधि

(ब) ब्रॉड बेड पद्धति बुआई तकनीक

बुआई विधि का रेखाचित्र

फसल पद्धति में पोषक तत्व आर्थिकी

क्रमबद्ध फसलों में मूंग को शामिल करने पर नाइट्रोजन की आर्थिकी में 30 से 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर मात्रा आगामी फसल को प्राप्त होती है। मूंग-मक्का फसल पद्धति में मक्का की फसल को 28 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्राप्त हो जाती है। मूंग की फसल के उपरांत मृदा परीक्षण में देखा गया है कि मृदा में 13 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर की बढ़ोतरी होती है। इसी प्रकार मूंग-धान पद्धति में मूंग की फसल की फली तोड़ने के पश्चात मूंग के पौधों को हरी खाद के रूप में मृदा में मिला देने पर परती-धान पद्धति की तुलना में 85.2 कि.ग्रा. नाइट्रोजन धान की फसल को अतिरिक्त प्राप्ति होती है। मूंग की फसल को खरीफ के मौसम में और रबी मौसम में गेहूं लगाने पर फसल को 37 से 41 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार दलहन-दलहन फसल पद्धति के अंतर्गत मूंग-मूंग फसल पद्धति में आगामी फसल को 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर तक प्राप्त हो जाती है।

मृदा के रासायनिक गुणों पर प्रभाव

पांच वर्षों तक लगाए गए प्रदर्शनों के आधार पर मूंग की प्रत्येक फसल के उपरांत मृदा नमूनों की जांच के औसत के आधार पर मृदा में कार्बनिक पदार्थ, उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर व जस्ते के स्तर में बढ़ोतरी हुई। प्रदर्शनों में उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं सल्फर की मात्रा में बढ़ोतरी क्रमश: 12, 0.5, 3 एवं 0.4 कि.ग्रा./हैक्टर की वृद्धि कृषक पद्धति के स्तर पर 214, 10.3, 212 एवं 8.8 कि.ग्रा./हैक्टर की तुलना में हुई। दूसरी ओर क्रमश: 44, 0.9, 14 एवं 0.8 कि.ग्रा./हैक्टर में आरंभ के स्तर 182, 9.9, 201 एवं 8.4 कि.ग्रा./हैक्टर की तुलना में हुई। वैज्ञानिकों के कथन के अनुसार मूंग की फसल जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसल है। यह जड़ एवं पत्ती आदि के माध्यम से मृदा सतह को उपजाऊ बनाकर प्राकृतिक रूप से भुरभुरा कर हवादार बनाती है। इससे लाभदायक जीवाणुओं का विकास भी बेहतर होता है।

सारणी 2. मूंग की फसल को काटने के उपरांत मृदा के रासायनिक गुणों पर प्रभाव (वर्ष 2010-2011 से 2014-15 का औसत)

तकनीक	पी-एच	वि.चा. (डेसी/मी.)	कार्बनिक पदार्थ (ग्राम/कि.ग्रा.)	उपलब्ध पोषक तत्व (कि.ग्रा./हैक्टर)				
				नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश	सल्फर	जस्ता
आरंभिक	7.81	0.31	2.81	182	9.9	201	8.4	0.58
कृषक पद्धति	7.79	0.29	2.92	214	10.3	212	8.8	0.61
उन्नत तकनीक*	7.78	0.29	2.96	226	10.8	215	9.2	0.63

*पीतशिरा मोजैक विषाणु प्रतिरोधी प्रजाति + मृदा जांच के आधार पर उर्वरक प्रयोग एवं बेड पद्धति से फसल बुआई

चौड़ी क्यारी तकनीक द्वारा लगाई गई मूंग

पोषक तत्व प्रबंधन

मुख्य पोषक तत्व: अन्य फसलों की तरह नाइट्रोजन की आवश्यकता दलहनी फसलों में भी अधिक होती है। दलहनी फसलों में आंतरिक क्षमता होने के कारण ये 80 से 90 प्रतिशत नाइट्रोजन की पूर्ति नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से कर लेती हैं। अब तक बहुत से प्रयोगों के आधार पर देखा गया है कि 10 से 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर बुआई के समय प्रयोग करने पर नाइट्रोजन की पूर्ति हो जाती है।

नाइट्रोजन के उपरांत फॉस्फोरस, दूसरा महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। मूंग की फसल में प्रयोगों के आधार पर 30 कि.ग्रा. तक फॉस्फोरस/हैक्टर प्रयोग का प्रभाव देखने को मिला एवं प्रति कि.ग्रा. फॉस्फोरस का प्रयोग करने पर 16.0 कि.ग्रा. मूंग की पैदावार/हैक्टर की वृद्धि हुई।

देश के विभिन्न हिस्सों में जहां दलहनी फसलों की खेती होती है, वहां पर मृदा सल्फर की कमी से प्रभावित है। सल्फर की मृदा में कमी होने पर अनाज वाली फसलों की तरह दलहनी फसलों को भी बहुत अधिक नुकसान होता है। पौधों को सल्फर की अधिक आवश्यकता दाना बनते समय होती है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में हुए प्रयोगों के आधार पर 20 से 40 कि.ग्रा. सल्फर/हैक्टर तक प्रयोग की आवश्यकता होती है।

सूक्ष्म पोषक तत्व: विभिन्न दलहनी फसलों पर मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पर हुए प्रयोगों के आधार पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग लाभप्रद रहता है। मृदा में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होने पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करना चाहिए। मूंग की फसल में मोलीब्डेनम का प्रयोग लाभकारी रहता है। ग्रीष्म ऋतु की फसल में 4 ग्राम मोलीब्डेनम/कि.ग्रा. बीज की दर से गोली बनाकर बुआई के समय प्रयोग लाभप्रद रहता है।

अधिक उत्पादन के लिए प्रभावी सस्य क्रियाएं

अनुसंधान प्रयोगों एवं प्रदर्शनों के आधार पर मूंग की फसल द्वारा देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए निम्न सस्य वैज्ञानिक तकनीकें सुझाई गई हैं:

प्रजातियों का चयन

मूंग की बसंत/ग्रीष्म ऋतु में खेती के लिए 60 से 70 दिनों में पककर तैयार होने वाली प्रजातियों को पसंद किया जाता है। खरीफ में 70 से 80 दिनों में पककर तैयार होने वाली प्रजातियों की सफलतापूर्वक खेती की जाती है। वर्षा के मौसम में सामान्यत: पीतशिरा मोजैक विषाणु रोग का प्रकोप अधिक होता है। इस मौसम में रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन क्षेत्रीय सिफारिश के अनुसार उत्तम रहता है।

बीज उपचार

बीज उपचार राईजोबियम, फॉस्फोरस घोलक जैव उर्वरक, वाम और कुछ रसायनों द्वारा करने पर बेहतर नोड्यूलेशन से अधिक फसल एवं उपज प्राप्त होती है। बीज उपचार किसी फसल विशेष के लिए निश्चित राईजोबियम जैव उर्वरक से फसल बुआई से पूर्व करते हैं। दलहनी फसलों द्वारा जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की मात्रा, फसल की जड़ों का विकास, नोड्यूल एवं राईजोबियम की संख्या पर निर्भर करता है। अत: मृदा में राईजोबियम जीवाणुओं की आवश्यक संख्या होनी चाहिए।

फफूंदनाशक जैसे कैप्टॉन, थीरम, बाविस्टीन आदि और साथ में उपयुक्त जैव उर्वरक से बीज उपचार करना भी जरूरी है। फफूंदनाशक से बीज उपचार, जैव उर्वरक से उपचारित करने से 4 से 5 दिनों पूर्व करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु की फसल को जैव उर्वरक से उपचारित करना बहुत आवश्यक होता है। ग्रीष्म ऋतु में मृदा में जीवाणुओं की संख्या बहुत कम हो जाती है।

बुआई समय

फसल की अवधि के अनुसार बुआई का समय घटता-बढ़ता रहता है। खरीफ में मूंग की बुआई का समय उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल जैसे अधिक वर्षा वाले राज्यों के लिए जुलाई का अंतिम सप्ताह उचित रहता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए द्विफसली पद्धति द्वारा बुआई वर्षा आरंभ होने पर करना ठीक रहता है। वर्षा में देरी अथवा फसल की बुआई न करने की स्थिति में भी जुलाई के अंतिम सप्ताह में बुआई की जा सकती है। हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर राज्यों के कम पहाड़ी वाले क्षेत्रों में मध्य जुलाई में बुआई का समय उपयुक्त रहता है।

बसंत/ग्रीष्म ऋतु के मौसम में मूंग की बुआई आलू, सरसों, मटर, कपास, गन्ना आदि की फसल के खेत खाली होते ही आरंभ कर देनी चाहिए। बसंत के मौसम में फसल की बुआई के लिए 70 से 80 दिनों में परिपक्व होने वाली प्रजातियों की बुआई मार्च के प्रथम सप्ताह से चौथे सप्ताह तक कर देनी चाहिए।

बीज दर, दूरी और बुआई

फसल उगाने का समय, फसल पद्धति और बीज आकार के आधार पर बीज दर निश्चित की जाती है। खरीफ की एक

मात्र फसल की खेती करने पर 20 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर प्रयोग करने पर पौधों की आवश्यक संख्या निश्चित की जा सकती है। ग्रीष्म ऋतु में पौधे की अधिक बढ़वार नहीं हो पाती अत: 25 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर प्रयोग करना चाहिए।

अंतरवर्ती फसल पद्धति में खरीफ की फसलों के साथ बीज दर, मूंग के लिए उपलब्ध स्थान के आधार पर निश्चित की जाती है। सामान्यत: मुख्य फसल की दो लाइनों के मध्य मूंग की एक लाइन और मुख्य फसल की लाइन से लाइन की दूरी 45 सें.मी. रखी जाती है। अंतरवर्ती फसलों को 1:1 लाइनों में लगाने पर 30 सें.मी. की दूरी रखी जाती है।

अंतरवर्ती फसल पद्धति

खरीफ में मूंग की फसल सामान्यत: मक्का, ज्वार, बाजरा, मूंग अथवा कपास के साथ सिंचित और असिंचित क्षेत्रों में अंतरवर्ती फसल पद्धति में खेती की जा सकती है।

जल प्रबंधन

दलहनी फसल मूंग में सिंचाई की गहराई बहुत ही महत्व रखती है। ये फसलें जलमग्नता सहन नहीं कर पाती हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर खेत से पानी तुरंत बाहर निकाल देना चाहिए। जलमग्नता की स्थिति में मृदा में राइजोबियम जीवाणुओं के लिए समस्या उत्पन्न हो जाती है और जो जीवाणु फसल की जड़ों के साथ उपस्थित होते हैं, वे खत्म हो जाते हैं। समस्त सहजीवन तंत्र खत्म हो जाता है। दलहनी फसलों की सिंचाई की क्रान्तिक अवस्थाओं, जैसे शाखाएं और फलियां बनते समय, पानी की आवश्यकता होती है। सामान्यत: मूंग की फसल को खरीफ (वर्षा) के मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। रबी फसल के उपरांत और वर्षा की समाप्ति होने पर फसल पक जाती है। निश्चित सिंचाई उपलब्धता वाले क्षेत्रों में ही ग्रीष्म ऋतु की मूंग की खेती की जा सकती है। बीज उगने के लिए सिंचाई की आवश्यकता होती है। बुआई के 25 दिनों पश्चात पहली सिंचाई की जानी चाहिए। तत्पश्चात 7 दिवस के अंतराल पर बेहतर उत्पादन के लिए 3 से 4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। ग्रीष्म ऋतु के मौसम में ली गई फसल पर केओलिन के छिड़काव से जल उपयोगिता क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। अनुसंधानों के परिणामों के अनुसार ग्रीष्म ऋतु के मौसम में ली गई मूंग की फसल में सिंचाई के 15 दिनों के अंतराल पर बुआई के 15, 30 और 45 दिनों के अंतराल पर केओलिन के छिड़काव से 1.33 टन/हैक्टर उपज प्राप्त हुई, जबकि 15 दिनों पर सिंचाई कर बिना केओलिन के छिड़काव करने पर मात्र 0.67 टन/हैक्टर प्राप्त हुई।

समन्वित सूखा प्रबंधन

- पानी की कमी से पराग कम उत्पन्न होता है। परिणामस्वरूप फलियों का निर्माण कम होता है। पराग उत्पन्न होने और सापेक्ष आर्द्रता का सकारात्मक सह-संबंध होता है।
- फसल की आरंभ की अवस्था में अधिक तापमान (0 से 15 दिनों बुआई के उपरांत) होने से मूंग के पौधों के जैव भार और उत्पादन में अपरिवर्तनीय क्षति होती है।
- वाम (वेस्कुलर अरवुस्कुलर माइकोराहिजा) के साथ में राईजोबियम कल्चर प्रयोग करने पर मृदा में नमी की कमी होने पर भी मूंग की प्रजातियों ने बेहतर परिणाम दिए हैं। नमी की कमी होने पर जड़ों द्वारा फसल को वाम और राईजोबियम कल्चर से उपचारित कर बुआई करने से फसल जड़ों द्वारा अतिरिक्त मृदा नमी एकत्रित होती है और फसल को लाभ मिलता है।

खरपतवार प्रबंधन

विभिन्न फसल पद्धतियों में उगाई जा रही दलहनी फसलों में पेन्डिमेथलीन, ऑक्सीफ्लोरन्फेन, एलाक्लोर, फ्लूक्लोरेलिन, ऑक्सीडायजोन आदि के प्रयोग में बढोतरी से कुछ हद तक खरपतवारों का नियंत्रण में हो रहा है। अध्ययनों में देखा गया है कि मूंग की फसल में 30 से 80 प्रतिशत नुकसान खरपतवारों से होता है। भिन्न-भिन्न फसलों को क्रमबद्ध लगाने पर भी खरपतवारों का जीवनचक्र टूट जाता है। अत: फसल चक्र अपनाने से भी कुछ खरपतवारों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

रोग प्रबंधन

मूंग की फसल को 38 प्रकार के फंगस, 12 प्रकार के विषाणु, 3 माइकोप्लाज्मा की तरह के जीव और 2 प्रकार के जीवाणु जनित रोग प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ जैसे मूंग का पीतशिरा मोजैक विषाणु, सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा (सर्कोस्पोरा सेनसीन) और चूर्णिल आसिता (एरीसाइफी पॉलीगेनी) आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं।

पीतशिरा विषाणु रोग

मूंग की फसल में पीतशिरा मोजैक विषाणु रोग सर्वाधिक हानि पहुंचाने एवं व्यापक रूप से क्षेत्रों में फैलने वाला रोग है। इसका प्रसारण सफेद मक्खी द्वारा होता है। इस रोग से 10 से 100 प्रतिशत तक का फसल को गंभीर नुकसान पहुंचता है। नुकसान का स्तर फसल की स्थिति पर निर्भर करता है।

प्रबंधन

समन्वित रोग प्रबंधन के घटक जैसे प्रतिरोधी प्रजातियां, सस्य तकनीकें और रसायनों के समन्वित प्रयोग से वेक्टर की संख्या में कमी और रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग

रोग की पहचान के लिए पत्ती पर भूरे बादामी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। धब्बों के चारों तरफ लाल रंग का बाहरी किनारा बन जाता है। इस रोग से 50 प्रतिशत तक उपज में क्षति पहुंचती है।

प्रबंधन

प्रतिरोधी किस्में: पत्ती धब्बा रोग की मूंग की प्रतिरोधी किस्में बहुत ही कम हैं। रोगरहित फसल की बुआई के लिए बीज का चयन एवं फंगस से होने वाले रोग प्रतिरोधी कल्चर से बीजोपचार करें। खेत की स्वच्छता, फसल चक्र, प्रभावित अवशेष को खत्म कर फसल को रोग के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

खरीफ (वर्षा) मौसम में बुआई में देरी करने से रोग से बचा जा सकता है। क्षेत्र विशेष के लिए सिफारिश किए गए फफूंदनाशक के प्रयोग से रोग का प्रभाव कम हो जाता है। फफूंदनाशक के दो छिड़काव करने पर फसल बुआई के 30 और 45 दिनों पर रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

चूर्णिल आसिता

यह रोग देश के सभी राज्यों में फैलता है, विशेष तौर पर रबी (शीत ऋतु) के मौसम में मूंग उगाने वाले राज्यों में अधिक क्षति होती है। इस रोग से उत्पादन में लगभग 21 प्रतिशत तक नुकसान होता है।

प्रबंधन: क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत प्रतिरोधी किस्मों का चयन करके खेती करना एवं फफूंदनाशकों का चयन कर छिड़काव प्रभावी पाया गया है। जैविक नियंत्रण में परजीवी फंगस, एम्पीलोमाइसिस क्विसम्विलिस जैव नियंत्रण के लिए प्रभावी पाए गए हैं।

सूत्रकृमि

सूत्रकृमि के प्रभाव से पौधों की जड़ें कठोर हो जाती हैं। जड़ों में घाव बन जाते हैं। पौधों को बाहरी रूप से देखने पर पौधों का समूह अथवा पट्टी में फसल की बढ़वार रुक जाती है। पौधे बुआई के लिए रह जाते हैं एवं पौधों का रंग पीला होने लगता है। फसल की बुआई के 35 दिनों के पश्चात फसल की जड़ें गठीली, रंग धूमिल और अंडाकर हो जाती हैं। इसके प्रभाव से मूंग की फसल में लगभग 23 प्रतिशत तक उत्पादन कम हो जाता है।

प्रबंधन: सूत्रकृमि प्रतिरोधी किस्मों का चयन कर खेती की जानी चाहिए। खरीफ मौसम में मूंग की फसल में सूत्रकृमि के प्रबंधन के लिए ग्रीष्म ऋतु का तापमान बहुत उपयोगी है। रबी फसल लेने के तुरंत बाद गहरी जुताई कर सूत्रकृमि से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। कार्बोफ्यूरॉन 3 जी अथवा फोरेट 10 जी 1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से प्रयोग कर सूत्रकृमि की संख्या में कमी लाई जा सकती है तथा उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

रोयेंदार इल्लियां

बहुत सी रोयेंदार इल्लियों की प्रजातियां क्षेत्र विशेष के आधार पर फसल को नुकसान पहुंचाती हैं। ये बड़ी संख्या में फसल की पत्तियों पर अंडे देती हैं। अंडे से बच्चे निकलने के पश्चात लार्वा, झुंड में पत्तियों को खाना प्रारंभ कर देते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियों का कंकाल तंत्र दूर से देखने पर भी पहचाना जा सकता है। लार्वा बड़े हो जाते हैं तब वे अलग-अलग होकर पत्तियों, फूलों और बढ़वार वाले भागों का भक्षण करते हैं। इल्लियों की संख्या अधिक हो जाने पर पूरी फसल को प्रभावित कर खत्म कर देते हैं। केवल डंठल ही बचते हैं और कभी-कभी फसल से उत्पादन ही नहीं मिल पाता।

तना मक्खी

यह कीट भी फसल उगने की अवस्था में ही क्षति पहुंचाता है। ये कीट पौधा बड़े होने पर पत्तियों के बाह्य शिरा के निचले भाग में सुरंग बनाकर पौधों की नसों के मध्य पहुंच जाते हैं और पत्तियों और तने को डंठल बना देते हैं। प्रभावित पौधों पर फलियां कम बनती हैं तथा फलियों में या तो दाने बनते ही नहीं और यदि बनते हैं तो छोटे रह जाते हैं।

सफेद मक्खी

सफेद मक्खी मूंग की फसल को गंभीर नुकसान पहुंचाने वाला कीट है। यह मक्खी पीतशिरा विषाणु रोग के प्रसार करने में अपनी सशक्त भूमिका निभाती है। इसके द्वारा 30 से 70 प्रतिशत तक उत्पादन को क्षति पहुंचती है। सफेद मक्खी की मादा और प्रौढ़ पौधों की पत्तियों के निचले भाग के रस को चूसकर पत्ती की जीवनशक्ति खत्म कर देते हैं, जिससे पौधा चिपचिपा और कठोर हो जाता है। अधिक प्रभाव होने पर पौधों की पत्तियां सिकुड़कर सांचेनुमा हो जाती हैं।

थ्रिप्स

थ्रिप्स कीट के प्रौढ़ नर व मादा कीट फूल व फलियों का रस चूसते हैं। परिणामस्वरूप फूल एवं फलियां गिर जाती हैं। इन कीटों द्वारा पत्तियों का रस चूसने से इनका रंग सिल्वर हो जाता है।

समन्वित नाशीजीव प्रबंधन

निगरानी: फसल की बढ़वार की अवस्था में कीट-व्याधियों के प्रभाव का आंकलन साप्ताहिक तौर पर करना चाहिए। रोयेंदार इल्ली आरंभिक अवस्था में झुंड में रहकर पत्तियों का भक्षण करती है। ऐसे स्थानों को दूर से देखकर भी पहचाना जा सकता है। थ्रिप्स की पहचान के लिए फसल के फूल आने की अवस्था (35 से 40 दिनों बुआई के पश्चात) पर निगरानी करनी चाहिए।

समन्वित प्रबंधन

बसंत ऋतु में शीघ्र बुआई (15 मार्च तक) कर पीतशिरा विषाणु रोग और थ्रिप्स के प्रभाव को कम किया जा सकता है। खरीफ मौसम में अधिक बढ़ने वाली फसल जैसे ज्वार के साथ अंतरवर्ती फसल से पीतशिरा विषाणु रोग का प्रभाव कम होता है। ग्रीष्म ऋतु में गहरी जुताई करने से मृदा के अंदर छिपे प्यूपा/लार्वा बाहर आ जाते हैं। इस अवस्था में उन्हें विपरीत वातावरण मिलने से या तो खत्म हो जाते हैं अथवा परभक्षी द्वारा खा लिए जाते हैं। ग्रीष्म/बसंत ऋतु की फसल में समय पर सिंचाई करने पर थ्रिप्स से होने वाली क्षति कम हो जाती है, क्योंकि थ्रिप्स की बढ़वार शुष्क मौसम में शीघ्र होती है।

प्रतिरोधी किस्में

पीतशिरा मोजैक विषाणु प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव कर मूंग की फसल लगानी चाहिए।

यांत्रिक विधियां

फसल पर अंडों के समूह और रोयेंदार इल्ली के लार्वा को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए। हेमीपेटर्न कीटों के अंडों को एकत्र कर फसल क्षेत्र से अलग कर देने चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण

मृदा में फोरेट अथवा कार्बोफ्यूरॉन दानेदार 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग करने पर बसंत/ग्रीष्म ऋतु की फसल का थ्रिप्स एवं वर्षा (खरीफ) के मौसम की फसल का तना मक्खी, सफेद मक्खी और जेसिड आदि से बचाव होता है। इसके साथ ही पीतशिरा विषाणु रोग का प्रकोप भी कम होता है। प्रभावित फसल पर क्षेत्र विशेष के लिए प्रभावी कीटनाशक का छिड़काव करने पर थ्रिप्स, सफेद मक्खी, जैसिड, तना मक्खी और अन्य पत्ती खाने वाले कीटों का प्रभाव कम हो जाता है।

भावी रणनीति

मूंग की फसल के क्षेत्रफल के विस्तार की बेहतर संभावनायें है। अनाज और अनाज आधारित फसल पद्धति लगातार अपनाने से कुल उत्पादन गुणांक कम हो रहा है। साथ ही उत्पादन में स्थिरता के लिए भी खतरा महसूस किया जा रहा है। मूंग की फसल अल्प अवधि की होने के साथ अधिक मात्रा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती है। साथ ही विभिन्न फसल पद्धति में भी शामिल हो जाती है अत: वरीयता देकर खेती की जानी चाहिए। देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के लिए जैविक व अजैविक प्रभावों की प्रतिरोधी किस्मों के विकास एवं बीज उत्पादन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

■

लेखकों से आग्रह

हमारे लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ ई-मेल पर ही भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1500 शब्दों की सीमा रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं। भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा ई-मेल पता है :
khetidipa@gmail.com

–संपादक

मृदा गुणवत्ता में सुधार से बढ़ाएं कृषि उत्पादन

के.के. बंद्योपाध्याय[1], मनोज श्रीवास्तव[1], सनातन प्रधान[2] और **एम. मोहंती[3]**
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–110012

“बढ़ती आबादी के लिए खाद्य और फाइबर की बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए उच्च स्तर पर उत्पादकता को बनाए रखने रखना भारतीय कृषि में यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। जैव उत्पादकता एवं पर्यावरण की गुणवत्ता बनाए रखने और पौधे, पशु और मानव स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए मृदा गुणवत्ता में सतत् सुधार करना जरूरी है। मृदा गुणवत्ता में मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता शामिल है। लंबे समय तक उच्च स्तर पर उत्पादकता बनाए रखने के लिए इसे बरकरार रखा जाना जरूरी है। फसल की आनुवंशिक उपज क्षमता तब तक प्राप्त नहीं की जा सकती है, जब तक कि मृदा के भौतिक वातावरण को इष्टतम स्तर पर नहीं बनाए रखा जाएगा। मृदा का भौतिक वातावरण इसके रासायनिक और जैविक गुणों को भी प्रभावित करता है।”

भारत में कुल भौगोलिक क्षेत्र के 328 मिलियन हैक्टर में से लगभग 173.65 मिलियन हैक्टर भूमि निम्न कोटि की हो चुकी है। यह भूमि अपनी क्षमता का 20 प्रतिशत से भी कम उत्पादन करती है। इस भूमि में से 89.52 मिलियन हैक्टर भूमि एक या एक से अधिक प्रकार की मृदा भौतिक बाधाओं से ग्रस्त है (सारणी-1)। एक बार क्षरित होने पर मृदा को अपनी पूर्व भौतिक स्थिति में बहाल करना मुश्किल है। मृदा की उर्वरता की समस्याओं के सुधारात्मक उपायों के विपरीत, भौतिक समस्याओं के आसान और सस्ते उपाय उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए पर्यावरण के लिए न्यूनतम जोखिम के साथ मृदा के भौतिक वातावरण को सुधारने के लिए हमें ईमानदारी से प्रयास करने चाहिए।

स्थल विशिष्ट मृदा की भौतिक समस्याओं का समाधान करने के लिए ‘मृदा सम्बधी भौतिक बाध्यताएं और टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए उनके सुधार’ पर अखिल भारतीय समन्वय अनुसंधान परियोजना, 13 समन्वित केन्द्र (नई दिल्ली, हिसार, जबलपुर, कोयम्बटूर, हैदराबाद, सोबुर, जोबनेर, खड़गपुर, लुधियाना, पालमपुर, भुबनेश्वर और तिरुवनंतपुरम) में शुरू की गई थी।

मृदा भौतिक बाधाओं के उन्मूलन के लिए प्रौद्योगिकियां

सख्त भूमि के लिए प्रौद्योगिकी

लाल ‘चल्का’ मृदा सूखने पर तेजी से और अपरिवर्तनीय रूप से सख्त होना, मूंगफली और अन्य जड़ों वाली फसलों के उत्पादन में बड़ी बाधा है। इस तरह की भूमि में धीमी गति से विघटित होने वाले अवशेषों जैसे धान की भूसी, नारियल-जटा आदि को मिलाकर अच्छी जुताई करना बहुत उपयोगी साबित हुआ। विभिन्न सुधारकों की दक्षता का क्रम इस प्रकार है; एफआईएम 10 टन/हैक्टर > नारियल-जटा 20 टन/हैक्टर > मूंगफली छिलका पाउडर 5 टन/हैक्टर > जिप्सम/4 टन/हैक्टर > धान की भूसी 5 टन/हैक्टर। धान की भूसी का 5 टन/हैक्टर के उपयोग के परिणामस्वरूप ज्वार और अरंडी की पैदावार में 14-23 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

पपड़ीकृत भूमि के लिए प्रौद्योगिकी

बारिश की बूंदों के प्रभाव के तहत

[1]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली; [2]भाकृअनुप-भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुबनेश्वर (ओडिशा); [3]भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल (मध्य प्रदेश)

कम कार्बनिक पदार्थों वाली भूमि में मृदा के समुच्य आसानी से अलग-अलग हो जाते हैं। इस प्रकार मृदा की सतह पर विच्छत हुई मृदा (मृत्तिका) की एक पतली परत जम जाती है, जो सूखने पर उच्च शक्ति की पपड़ी के रूप में विकसित हो जाती है। यह पपड़ी मृदा और वायुमंडल के बीच गैसों के आदान-प्रदान को कम करती है और पनपते हुए पौधों के सिरों को भी नुकसान पहुंचाती है। इससे पौधों की संख्या में काफी कमी आती है। इस वजह से किसानों को फिर से बुआई करनी पड़ती है। यह समस्या कम करने के लिए 'बीज पंक्ति मल्च प्रौद्योगिकी' नामक एक तकनीक विकसित की गई है।

उथली भूमि के लिए प्रौद्योगिकी

उथली भूमि के कारण जड़ों की वृद्धि सीमित रह जाती है, इससे फसल के लिए आवश्यक मात्रा में पानी और पोषक तत्वों की आपूर्ति नहीं हो पाती है। 15 से 35 सें.मी. तक की गहराई की उथली भूमि पर 10 सें.मी. ऊंची रिज का निर्माण जड़ों के विकास के लिए फायदेमंद होता है। रिज पर बुआई के साथ-साथ मृत्तिका या धान की भूसी के उपयोग से मृदा की भौतिक स्थिति और फसल विकास में भी सुधार होता है। समोच्च पर 1 मीटर के उर्ध्व अंतराल पर रिज और कुंड के निर्माण के साथ-साथ खस घास अवरोध के रूप में उगाने से अपवाह और मृदा की क्षति में क्रमश: 88 और 92 प्रतिशत, कमी आती है (पनुली और यादव, 1998)। इससे फसल वृद्धि के दौरान अधिकतम नमी अवधारण में मदद मिलती है और फसल की उच्च पैदावार प्राप्त होती है।

काली मृदा के लिए प्रौद्योगिकी (अस्थायी जल भराव)

बरसात के मौसम में जल भराव से बचने के लिए निम्न वर्षा और उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों की काली मृदा में विभिन्न जुताई और भूमि उपचार जैसे, रिज और कूंड़ के निर्माण, विस्तारित क्यारी और कूंड़ और विभिन्न चौड़ाई के उठी हुई और गहरी क्यारियां प्रभावी पाई गए हैं। यह तकनीक समतल भूमि पर सबसे अधिक प्रभावी है। उठी हुई और गहरी क्यारी की चौड़ाई बारिश की मात्रा के साथ भिन्न होती है, जहां औसत वार्षिक वर्षा 1330 मि.मी. है। 9 मीटर चौड़ी उठी हुई (30-35 सें.मी.) क्यारी और 6 मीटर चौड़ी गहरी क्यारी का एक संयोजन बहुत प्रभावी पाया

कठोर मृदा के लिए प्रौद्योगिकियां

जड़ों का विकास, हवा, पानी और पोषक तत्वों के प्रवाह को कठोर मृदा रोकती है। यह फसल उपज को प्रभावित करती है, इस समस्या को कम करने के लिए तीन तकनीकों का विकास किया गया है; छेनी प्रौद्योगिकी, छेनी और मृदा सुधारक समन्वित तकनीक और रिज प्रौद्योगिकी।

छेनी प्रौद्योगिकी

यह देखा गया है कि गहरी जुताई/छेनी प्रौद्योगिकी के माध्यम से उपसतह में स्थित संमिश्र या कठोर परत टूट जाती है। इस प्रकार जड़ों के ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज विकास में सुविधा होती है। मृदा और फसल की आवश्यकता के अनुसार, 50 से 60 सें.मी. की दूरी पर 30-50 सें.मी. की गहराई तक छीलन की सिफारिश की गई है। यद्यपि लाल मृदा में लगातार सात फसल क्रम तक छीले जाने का प्रभाव अर्थपूर्ण रहता है। हल्के गठन वाली मृदा में इसका प्रभाव समय के साथ तेजी से कम हो जाता है। इस प्रकार हल्के गठन वाली मृदा में हर खरीफ सीजन में और लाल मृदा में 2-3 साल में एक बार छीलन की सिफारिश की गई है। कोयंबटूर में इस उद्देश्य के लिए एक कम लागत वाला छेनी हल विकसित किया गया है। 50 सें.मी. की दूरी और 35 सें.मी. की गहराई पर छीलन करने के कारण भोपाल की काली मृदा में सोयाबीन और अरहर की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई (घोष एट अल., 2006) और कोयम्बटूर लाल मृदा में मक्का की और हिसार की रेतीली दोमट मृदा में कपास की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

जॉबनेर लोहा कंक्रीट रोलर (जेआरआईसी रोलर)

छेनी और मृदा सुधारक समन्वित प्रौद्योगिकी

काली मृदा में, मॉटोरिलोनिटिक मृत्तिका अत्यधिक होने से यह मृदा गीली होने पर तेजी से फूल जाती है। छेनी प्रौद्योगिकी माध्यम से तोड़ी गई उपसतह पर समिश्र या कठोर परत का पुन: निर्माण हो जाता है। मृदा सुधारक जैसे जिप्सम का 5 टन/हैक्टर या एफवाईएम को 20 टन/हैक्टर की दर से भूमि में मिलाने पर भूमि का संघनन कम हो गया।

रिज प्रौद्योगिकी

रिज के निर्माण से, कॉम्पैक्ट लेयर के ऊपर जड़ों के आयतन में बढ़ोतरी हो जाती है। इस प्रकार फसल की पैदावार बढ़ जाती है। हिसार में सामान्य सतह पर उगाई हुई फसलों की तुलना में रिजों पर उगाई हुए सरसों की पैदावार में 33 प्रतिशत की वृद्धि हुई और बाजरे की पैदावार में 37 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सारणी 1. भारत में विभिन्न भौतिक अवरोधों से प्रभावित मृदा क्षेत्र का वितरण

भौतिक बाधाएं	मुख्य प्रभावित राज्य
कम गहराई	आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, केरल और गुजरात
सख्त भूमि	आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और बिहार
उच्च पारगम्यता	राजस्थान, पश्चिम बंगाल, गुजरात, पंजाब और तमिलनाडु
उपसतह कठोर परत	महाराष्ट्र, पंजाब, बिहार, राजस्थान, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु
पपड़ीकृत भूमि	हरियाणा, पंजाब, पश्चिम बंगाल, ओडिशा और गुजरात
अस्थायी जल भराव	मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात, केरल और ओडिशा

गया है। जहां औसत वार्षिक वर्षा 830 मि.मी. है, समान चौड़ाई की उठी हुई क्यारी पाई गई है। जल भराव के लिए अतिसंवेदनशील फसलें जैसे सोयाबीन, चना, ज्वार को उठी हुई क्यारियों में उगाया जाता है। ये फसलें जल भराव के लिए प्रतिरोधी होती हैं, जैसे धान को गहरी क्यारी में लगाना। इस प्रकार फसल अपनी आवश्यकता के अनुसार, भौतिक माहौल (एरोबिक और एनारोबिक) प्राप्त करती है। इस तकनीक का उच्च वर्षा वाली काली मृदा के क्षेत्रों में एक और महत्वपूर्ण लाभ यह है कि एक ही वर्ष के दौरान दो फसलें लेना संभव है, अन्यथा वर्षाकाल में जल भराव के कारण खेतों को खाली छोड़ना पड़ता था।

विभिन्न प्रौद्योगिकियों के आर्थिक मूल्यांकन

किसान के दृष्टिकोण से किसी भी तकनीक को अपनाने के लिए आर्थिक पहलू मुख्य चिंता का विषय है। विभिन्न मृदा व भौतिक बाधाओं को दूर करने के लिए उपर्युक्त सभी प्रौद्योगिकियों को लाभ के रूप में आर्थिक रूप से व्यवहार्य है। इन सभी प्रौद्योगिकियों से 0.44 से 5.28 का लाभ : लागत अनुपात हासिल किया गया था, हालांकि इन तकनीकों को किसानों द्वारा काफी प्रारंभिक निवेश की आवश्यकता है (सारणी-2)। इसके अलावा आर्थिक विश्लेषण से पता चलता है कि किसान द्वारा किए गए निवेश को पहले वर्ष में ही हासिल किया जा सकता है। इन तकनीकों का आर्थिक लाभ एक वर्ष से अधिक समय तक चलता है। आर्थिक लाभ के अलावा, इन प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के परिणामस्वरूप, मृदा और पानी के संरक्षण, इनपुट उपयोग दक्षता में वृद्धि और मृदा की गुणवत्ता में सुधार आया है, जिसका आर्थिक रूप से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है।

इन पर्यावरण अनुकूल प्रौद्योगिकियों को किसानों द्वारा अपनाने के लिए विभिन्न राज्य एजेंसियों, विस्तार कर्मी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। उच्च स्तर पर उत्पादकता को बनाए रखने के लिए और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए विचार किया जाना चाहिए। साथ ही पर्यावरण के अनुकूल प्रौद्योगिकियों के विकास और शोधन में किसानों की सहभागिता भी आवश्यक है।

ट्रैक्टरचालित छेनी

डेजर्ट टेक्नोलॉजी

हल्की बनावट वाली लैटराइट और फुसफुसी मृदा उच्च पारगम्यता को दर्शाती है। इससे पानी और पोषक तत्वों का नुकसान हो सकता है। अत्यधिक पारगम्य मृदा के प्रबंधन के लिए तीन अलग-अलग तकनीकों जैसे मृदा का संघनन, भूमि में मृत्तिका मिलाना और भूमि में मृत्तिका मिलाने के साथ-साथ मृदा संघनन का विकास किया गया है।

अतिरिक्त मृत्तिका के मिलाये बिना संघनन तकनीक का वांछित प्रभाव रेगिस्तान की मृदा में प्राप्त नहीं होता है। इस तकनीक में 2 प्रतिशत अतिरिक्त मृत्तिका मिलाने के बाद भूमि का संघनन किया जाता है। रेगिस्तानी मृदा में पानी और पोषक तत्व प्रतिधारण और उपज स्थिरता के मामले में इस तकनीक के परिणाम इतने अभूतपूर्व हैं कि यह तकनीक *'डेजर्ट टेक्नोलॉजी'* के रूप में लोकप्रिय है। इस तकनीक से गेहूं की पैदावार में 29 प्रतिशत और बाजरे की पैदावार में 37 प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है। इसे लागू करने के लिए जॉबनेर में एक कम लागत वाला रोलर बनाया गया है, जिसे *जॉबनेर लोहा कंक्रीट रोलर* (जेआरआईसी रोलर) के नाम से जाना जाता है।

सारणी 2. प्रौद्योगिकियों के आर्थिक मूल्यांकन

प्रौद्योगिकी	फसल	स्थान	लाभ:लागत अनुपात
सघनन	गेहूं	दिल्ली	3.13
	गड्ढा	दिल्ली	2.19
	धान-गेहूं	खड़गपुर	1.26
मृत्तिका मिलाना (2 प्रतिशत मृत्तिका)	ज्वार	हैदराबाद	1.37
मृत्तिका मिलाना (2 प्रतिशत मृत्तिका) + संघनन	बाजरा	जोबनेर	5.28
छेनी प्रौद्योगिकी	ज्वार	हैदराबाद	1.37
	ज्वार	कोयंबटूर	1.13
	टैपिओका	कोयंबटूर	2.43
	मूंगफली	कोयंबटूर	3.20
	गड्ढा	कोयंबटूर	2.67
उठी और गहरी क्यारी	सोयाबीन	जबलपुर	3.94
	चना	जबलपुर	2.35
	धान	जबलपुर	1.57
रिज प्रौद्योगिकी + खस अवरोध	अरंडी	हैदराबाद	2.00
फसल अवशेष मिलाना	ज्वार-अरंडी	हैदराबाद	3.09

शुष्क क्षेत्रों में जल क्षमता बढ़ाने की तकनीकें

दशरथ सिंह[1] और **धर्मेन्द्र सिंह यशोना**[2]

"जल न केवल फसलों बल्कि सभी जीवों के लिए नितांत आवश्यक है बल्कि पौधे की कई जैव-रासायनिक क्रियाओं में भी जल भाग लेता है। इसके अभाव में पौधे पोषक तत्वों को ग्रहण नहीं कर पाते हैं। यह एक प्राकृतिक संसाधन है, इसका उपयोग बहुत ही अच्छे ढंग से करने की आवश्यकता है। जल की सीमित उपलब्धता के कारण इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। पानी की कमी से फसलोत्पादन भी गिरता है। पानी का सही ढंग से उपयोग कर इसकी कमी से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस लेख के माध्यम से जल उपयोग क्षमता बढ़ाने के वैज्ञानिक तकनीकों को प्रस्तुत किया गया है।"

भारत में कुल कृषि भूमि का लगभग 55 प्रतिशत क्षेत्रफल आज भी वर्षा आधारित सिंचित क्षेत्र के अंतर्गत आता है। देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन का 44 प्रतिशत वर्षा सिंचित क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। इससे देश की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या का भरण-पोषण होता है। इसी क्षेत्र से 85 प्रतिशत मोटा अनाज, 70 प्रतिशत तिलहन, 8 प्रतिशत दाल एवं 40 प्रतिशत तक चावल का उत्पादन होता है। यह एक सच्चाई है कि कृषि के क्षेत्र में इतना विकास होने के बाद भी कुल खेती योग्य क्षेत्रफल का 45-50 प्रतिशत के लगभग क्षेत्र वर्षा आधारित सिंचित ही है।

वर्षा आधारित कृषि एक जोखिम भरी और जटिल कृषि प्रणाली है। यह मानसून की अनियमितता एवं वितरण के साथ मिलकर फसल उत्पादन में व्यापक अंतर एवं अस्थाइता उत्पन्न करते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल उत्पादन में उचित तरीकों से जल का प्रबंधन किया जाए तो इन क्षेत्रों से सिंचित क्षेत्रों के समान उत्पादन प्राप्त कर खाद्य उत्पादन को अधिक बढ़ाया जा सकता है। विश्व स्तर पर 80 प्रतिशत से अधिक जल का उपयोग मनुष्य द्वारा मुख्यत: फसल उत्पादन के लिए किया

[1]प्रक्षेत्र विस्तार अधिकारी, ज.ने.कृ.वि.वि., जबलपुर (मध्य प्रदेश); [2]अनुसंधान सहायक, भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल(मध्य प्रदेश)

जाता है। वर्तमान समय में भूमिगत जल का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। इसके कारण वर्षा आधारित क्षेत्रों में मृदा की अधिक कठोर सतह का जल कम समय के लिए रह पाता है।

सिंचाई के सभी संसाधनों का पूर्णत: उपयोग कर लेने के बाद भी 50 प्रतिशत क्षेत्र को सिंचित नहीं किया जा सकता। अत: वर्षा आधारित क्षेत्रों पर कृषि विकास करने के लिए आवश्यक है कि कुछ ऐसे वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जाये, जिनसे कि इन क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसलों की जल उपयोग क्षमता को बढ़ाया जा सके। इससे वर्षा की अनियमितता एवं अनिश्चता होने पर भी फसल को जल कमी से बचाया जा सकता है। वर्तमान समय में शुष्क क्षेत्रों में जल संकट व्याप्त है।

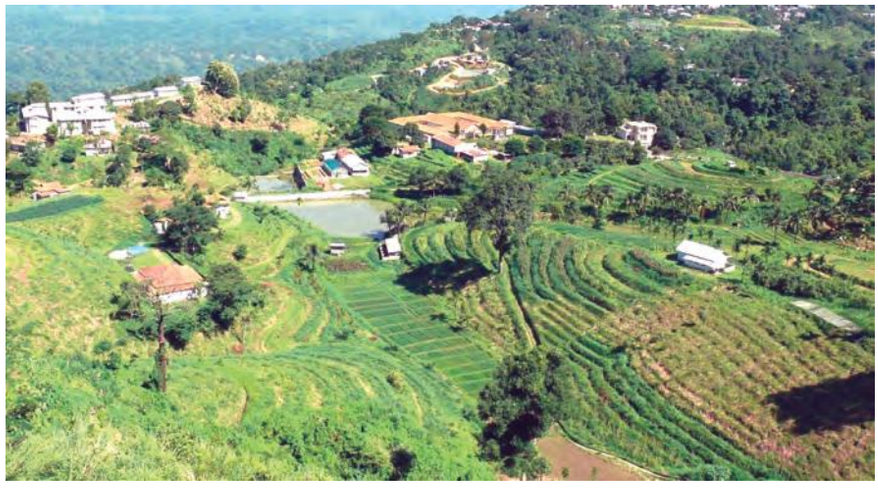

जल की प्रत्येक बूंद है कीमती

कृषि उत्पादन को बढ़ते क्रम में बनाये रखने के लिए जल संरक्षण के उपायों को अपनाने पर जोर दिया जा रहा है। ऐसे समय में कृषि क्षेत्र में जल की कमी की पूर्ति करना आवश्यक है। इस समय जल की बढ़ती मांग की पूर्ति करने का एकमात्र उपाय उपलब्ध जल का लंबे समय तक संरक्षण करना है।

वर्षा जल का उचित प्रबंधन न हो पाने के कारण जल हानि के साथ उपजाऊ मृदा का भी निरंतर ह्रास हो रहा है। अत: खेतों तथा सभी क्षेत्रों से जल को बहकर नष्ट होने से रोकने के प्रयास करने होंगे साथ ही कृषि में ऐसी फसलों के समावेश को बढ़ावा देने की आवश्यकता है, जो कम जल मांग करती हों और मृदा ह्रास को कम करने में सक्षम होने के साथ वर्षा जल को जमीन में रिसने को सुलभ बनाती हों। वर्षा आधारित फसलों में वाष्पन-वाष्पोत्सर्जन कुल अवक्षेपण से अधिक होता है, इससे फसल उत्पादन कम हो पाता है। इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन के लिए जल का संरक्षण करके फसलों को पर्याप्त जल उपलब्धता या सूखा पड़ने पर प्रतिरोधिता उत्पन्न कर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। ऐसे कुछ उपाय जो कि शुष्क क्षेत्रों में जल उपयोग क्षमता बढ़ाने में सार्थक हो सकते हैं, उनकी विस्तृत विवेचना आगे दी गई है:

भूमि प्रबंधन

शुष्क क्षेत्र में वर्षा की मात्रा एवं वर्षा समय, दोनों अल्प होते हैं। मृदा का इस प्रकार प्रबंधन किया जाना चाहिए कि मृदा में जल की उपलब्धता पौधों के लिए अधिक समय तक बनी रहे। उचित भूमि प्रबंधन द्वारा वर्षा जल को काफी मात्रा में संचय किया जा सकता है। दो से तीन वर्ष के अंतराल पर गहरी जुताई एवं वर्षा से पहले गर्मी में जुताई कर दी जाए तो भूमि अधिक मात्रा में पानी सोखती है। जुताई, खेत के ढलान के समकोण पर करके जल बहाव में अवरोध उत्पन्न कर

सिंचाई की उन्नत विधियां

पानी की क्षति कम करने एवं उपयोगिता बढ़ाने के लिए सिंचाई की कई प्रकार की विधियों पर प्रयोग किए गए हैं। विभिन्न फसलों के सिंचाई की कम जल उपयोग क्षमता वाली सिंचाई विधियों को अपनाने से खेत में पानी भरने की समस्या पर काबू पाया जा सकता है। इसमें बार्डर स्ट्रिप विधियां जिनसे पानी का बहुत अपव्यय होता है। इसकी अपेक्षा मेड़ और नाली विधि अधिक उपयुक्त पाई गई है। अब कुछ ऐसे रिज-फरो प्लांटर विकसित किए गए हैं, जो कि यांत्रिक विधि से मेड़ों पर बुआई अथवा पौध लगा सकते हैं। उनके द्वारा बनाई गई नालियों को सिंचाई के उपयोग में लाया जा सकता है।

हाल में नालियों द्वारा सिंचित बीज शैय्या, गेहूं और दलहनी फसलों में जल की बचत करने की फसल तकनीक के रूप में लोकप्रिय हो रही है। फसलों में नालियों द्वारा सिंचाई करने से जल की 35-40 प्रतिशत बचत हो जाती है।

इसके अतिरिक्त एक-एक कूंड़ छोड़कर सिंचाई करने से और भी जल बचाया जा सकता है। गन्ने में एक-एक कूंड़ क्रमश: छोड़कर सिंचाई करके तथा मैदानी क्षेत्रों की फसलों में दो कूंड़ों के मध्य एक कूंड़ छोड़कर सिंचाई करने से 12-30 प्रतिशत जल की बचत की जा सकती है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि फव्वारा विधि के प्रयोग से गेहूं की पैदावार चेक बेसिन (क्यारी) विधि की अपेक्षा 33 से 37 प्रतिशत अधिक हुई। स्प्रिंक्लर, माइक्रो-स्प्रिंक्लर तथा टपक सिंचाई जैसी आधुनिक सिंचाई प्रणालियों द्वारा जल उपयोग की क्षमता के साथ-साथ पोषक तत्व उपयोग क्षमता में भी सुधार लाया जा सकता है।

धान और जूट जैसी फसलों को छोड़कर अन्य सभी फसलों में स्प्रिंक्लर तथा माइक्रो-स्प्रिंक्लर सिंचाई प्रणाली अपनाई जा सकती है। स्प्रिंक्लर विधि द्वारा सिंचाई करने से जल की आवश्यकता में 20-30 प्रतिशत तक कमी लाई जा सकती है। साथ ही साथ उपज में 30-40 प्रतिशत के मध्य वृद्धि हो सकती है।

टपक सिंचाई प्रणाली द्वारा सिंचाई करने से जल उपभोग क्षमता 58 से 90 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। इसी कारण यह प्रणाली अत्यंत लोकप्रिय हो रही है। टपक विधि द्वारा 30 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है। टपक सिंचाई विधि द्वारा रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता अधिक पाई गई है। सिंचाई की सामान्य विधियों की अपेक्षा टपक सिंचाई द्वारा जल उपभोग क्षमता में सुधार पाया गया है। इस प्रणाली के अपनाने से जल की बचत के साथ-साथ उर्वरकों का भी प्रबंधन उचित रूप से होता है। खरपतवारों तथा रोगों व कीटों से भी फसलों को कम क्षति पहुंचती है।

गति को कम कर सकते हैं।

समोच्च जुताई

वर्षा जल जब मृदा की सतह पर संतृप्त होने के बाद जल अपवाह के रूप में ढलान के अनुरूप बहता है तब ढलान के समानांतर जुताई कर जल अपवाह को कम किया जा सकता है। इस प्रकार मृदा द्वारा जल का अधिक अवशोषण किया जाता है और यह मृदा में नमी के रूप में बना रहता है।

गहरी जुताई

आगामी फसल की बुआई करने से पहले खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करके वर्षा जल, मृदा द्वारा पर्याप्त मात्रा में अवशोषित कर लिया जाता है। इससे आगामी फसल के जल भाग की पूर्ति की जा सकती है। मानसून पूर्व खेत के चारों तरफ से मेड़बंदी व जुताई कर जल संरक्षण किया जा सकता है। असिंचित क्षेत्र की फसल वर्षा के जल पर ही आश्रित होती है। अत: यह फसल के लिए अमृत के समान होता है। गहरी जुताई से मृदा नमी अधिक समय तक संरक्षित रहती है। इससे आगामी फसल का अंकुरण पर्याप्त मात्रा में होता है और फसल की जल मांग भी पूरी होती है।

भू समतलीकरण एवं मेड़बंदी

अधिक ढालयुक्त मृदा से वर्षा जल का बहाव ढाल के प्रतिशत से दो गुने अधिक प्रवाह से बहता है। भू समतलीकरण से मृदा में पानी का नीचे की ओर प्रवाह घट जाता है। इससे मृदा जल मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। खेत में कुछ अंतराल पर मेड़बंदी कर भी जल के प्रवाह को कम किया जा सकता है।

जल उपयोग दक्षता बढ़ाने की जरूरत

मेड़बंदी से वर्षा का जल अधिक समय तक मृदा सतह पर रुकने से पर्याप्त मात्रा में मृदा द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। इससे फसलों द्वारा अधिक समय तक जल की पूर्ति की जा सकती है।

ढाल के समकोण में जुताई

खेत में ढाल का प्रतिशत अधिक है तो ढाल के समकोण में जुताई करके जल के बहाव का नियंत्रण किया जाता है। इससे वर्षा का जल खेत में अधिक गहराई तक अवशोषित कर लिया जाता है। इस प्रकार नालियों का पानी खेत में अधिक समय तक ठहरेगा। इससे भूमि में जल की प्रतिशत मात्रा में वृद्धि होगी।

समोच्च रेखाओं पर खेती

शुष्क क्षेत्रों में कंटूर ट्रेंच का निर्माण कर भी वर्षा जल को संरक्षित किया जाता है। इन ट्रेंच पर फसल उगाकर जल की कमी को पूरा किया जाता है। वर्षा जल का संरक्षण करने के लिए ट्रेंच का निर्माण ढाल के अनुरूप किया जाता है, जिससे कि वर्षा का पर्याप्त मात्रा में संचयन हो सके।

सस्यन प्रबंधन

फसल उत्पादन के लिए शुष्क क्षेत्रों में ऐसी सस्यन की विधियों एवं फसलों के समावेश को बढ़ाने की आवश्यकता है, जो वर्षा द्वारा प्राप्त जल में भरपूर उत्पादन देने में सफल हों। फसलों का चयन क्षेत्र की मृदा के प्रकार एवं उर्वरता के अनुरूप होना चाहिए। इससे शुष्क दशा में फसल पौध अपना जीवनकाल बिना जल की कमी के पूर्ण कर सकेगा। शुष्क क्षेत्रों के लिए फसलों एवं उनके साथ की जाने वाली कुछ क्रियाओं को अपनाने से वर्षा जल का संरक्षण किया जा सकता है।

फसलों का चयन

वर्षा जल की कमी के कारण शुष्क क्षेत्र पर फसल उत्पादन में कमी फसल आधारित भी होती है। इन क्षेत्रों पर सामान्यत: मक्का, ज्वार, अरहर, बाजरा, कपास जैसी फसल उगाकर अधिक जल मांग वाली फसलों की अपेक्षा अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी फसलें अपनी गहरे एवं विस्तृत जड़ संरचना के कारण जल का उपयोग विपरीत परिस्थिति में भी कर पाने में सफल होती हैं। ऐसी फसलों से मृदाक्षरण की समस्या उत्पन्न होती है। इसलिए फसल के साथ अंतरासस्यन के रूप में कम अवधि वाली फसलों का समावेश भी आवश्यक है। इस प्रकार मृदा संरक्षण के साथ जल को भी संरक्षित किया जा सकता है।

फसल चक्र अपनाना

मृदा की विभिन्न परतों की उर्वराशक्ति एवं जल संचयन क्षमता का सही उपयोग एवं वर्षा की कमी के निदान के लिए फसल चक्र अपनाया जाता है। फसल चक्र में भूमि कटाव अवरोधक फसलें जैसे कि तिलहनी, दलहनी, घास आदि का समावेश करना चाहिए। मृदा एवं जल को अधिक समय तक संरक्षित कर ज्यादा उपज प्राप्त की जा सकती है। फसल चक्रण में गहरी जड़ वाली अधिक अवधि की एवं उथली जड़ वाली कम अवधि की फसलों का चयन आवश्यक है। इससे उपलब्ध जल का समुचित उपयोग फसलों द्वारा किया जा सकता है।

मिश्रित खेती

मिश्रित खेती में दो या अधिक फसलें एक साथ उगाई जाती हैं। शुष्क क्षेत्रों में इस प्रकार की खेती भूमि की सतह पर जल बहाव में अवरोध उत्पन्न कर भूमि एवं जल संरक्षण को बढ़ावा देती है। प्राकृतिक प्रकोप के समय भी एक फसल तो किसान को मिल

पलवार का उपयोग

जल संवर्धन के लिए शुष्क क्षेत्रों में पलवार का उपयोग करना फसलों में सिंचाई करने के समान ही सफल एवं कारगर उपाय है। फसलों की कतारों के बीच घास, भूसा, पत्तियां, कागज, पॉलीथीन एवं अन्य कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों को बिछाने से भूमि की नमी को अधिक समय तक बनाए रखा जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में फसल उत्पादन के लिए सीमित मात्रा में नमी उपलब्ध होने के कारण उत्पादन में वृद्धि एवं जल उपयोग क्षमता में सुधार करने के लिए जल की एक-एक बूंद का संरक्षण किया जाना चाहिए। गन्ने की पत्तियों को पलवार के रूप में प्रयोग करके 55 प्रतिशत जल से ही सामान्य उपज प्राप्त की जा सकती है। खेतों में फसल अवशेष का पलवार के रूप में उपयोग करना एक प्राचीन विधि है। नये प्रयोगों में पलवार का उपयोग कर जल उपयोग क्षमता में 30-50 प्रतिशत तक वृद्धि हुई। हल्की मृदाओं में निराई तथा पौध संख्या कम करने के पश्चात खरपतवार तथा घासों को भी पलवार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। खेत की ऊपरी सतह पर बार-बार होइंग द्वारा मृदा घुलनशील पलवार बनाकर तथा अधिक अंतराल वाली फसलों, सब्जी एवं फलदार वृक्षों में पलवार के प्रयोग के साथ-साथ सिंचाई करने से उत्पादकता के साथ जल उपयोग क्षमता में सुधार लाया जा सकता है।

जाती है। मिश्रित खेती में फसल द्वारा मृदा को समान रूप से ढक दिया जाता है। इससे मृदा सतह से होने वाले वाष्पीकरण की दर को नियंत्रित कर जल ह्रास को कम किया जा सकता है।

जैविक खाद का उपयोग

जैविक खाद फसलों को पोषक तत्वों की पूर्ति ही नहीं करती बल्कि यह मृदा की भौतिक अवस्था भी सुधारती है। इससे मृदा भुरभुरी, मृदा में वायु संचार, पारगम्यता बढ़ना, जल उपयोग क्षमता में वृद्धि एवं जल अप्रवाह वेग में काफी कमी होती है। जैविक खाद मृदा के कणों को बांधकर रखती है। इस मृदा में पर्याप्त सूक्ष्म छिद्र होते हैं। वर्षा जल का संचयन इन सूक्ष्म छिद्र में अधिक समय तक मृदा कणों के साथ बना रहता है। जैविक खाद से मृदा जल धारण क्षमता में वृद्धि होने से सूखे की अवस्था में भी पौधों को पर्याप्त जल प्राप्त होता रहता है। इससे फसलों को लंबे वर्षा अंतराल में भी जल की कमी नहीं होती।

उन्नत किस्में एवं परिपक्वता समय

शुष्क क्षेत्र में फसलों से अधिक पैदावार प्राप्त करने में फसल की पकने की अवधि का बहुत बड़ा योगदान होता है। इन क्षेत्रों में फसल उगाने के लिए 10-12 सप्ताह का समय मिलता है। इस अवधि के दौरान जो फसलें अपना जीवनचक्र पूरा कर लेती हैं उनसे अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। देरी से पकने वाली फसलें अपना जीवनकाल जल की कमी के कारण पूर्ण नहीं कर पाती हैं। इसलिए फसलों की ऐसी किस्मों का चयन करना चाहिए, जो कम समय में परिपक्व होती हैं और मृदा में पर्याप्त नमी बने रहने तक अपना जीवनचक्र पूर्ण कर लेती हैं।

खरपतवार नियंत्रण

शुष्क क्षेत्र में नमी एवं पोषक तत्व फसल उत्पादन के प्रमुख घटक हैं। खरपतवार फसलों के साथ नमी एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा कर उपयोग करने में फसलों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होते हैं। खरपतवार एवं फसलों के मध्य मुख्यत: 25-30 दिनों तक की अवस्था तक अधिक प्रतिस्पर्धा होती है। इसी अंतराल में खरपतवार का नियंत्रण कर मृदा जल का संरक्षण किया जा सकता है। खरपतवार द्वारा मृदा जल का अवशोषण फसलों की अपेक्षा अधिक मात्रा में किया जाता है और ये फसलों के लिए जल की कमी उत्पन्न कर देते हैं।

वाष्पन प्रतिरोधी पदार्थ का उपयोग

शुष्क क्षेत्र की फसलों में ऐसे पदार्थों का उपयोग जल की कमी होने पर पौधों के उन हिस्सों पर किया जाता है, जहां से वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया अधिक होती है। इसके उपयोग से पौधों के वायुवीय भागों से वाष्पोत्सर्जन कम मात्रा में होने लगता है। इससे पौधों द्वारा जल का ह्रास वाष्पोत्सर्जन के रूप में कम होता है। मृदा में जल की कमी होने पर भी पौधों में मुरझान की अवस्था में कमी की जा सकती है। वाष्पन प्रतिरोधी पदार्थ कई प्रकार के होते हैं। जैसे-स्टोमेटा बंद करने वाले-फिनाइल मरक्यूरिक एसिटेट, एट्राजीन, एबीए आदि जो पौधों की पत्तियों से वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया को कम कर देते हैं। मोम, तैलीय, तरल सिलिकॉन, मोबीलीफ, हेक्जाकेनोल, आदि प्रकार के पदार्थ पत्तियों की सतह पर पतली फिल्म बनाकर वाष्पोत्सर्जन को कम करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पदार्थ कावोलिन, साइकोसील इत्यादि प्रकाश का परावर्तन एवं पौधों की वृद्धि रोककर जल की उपयोग क्षमता बढ़ाते हैं। इन पदार्थों के उपयोग से पौधों की अन्य क्रियाएं प्रभावित होती हैं। इनका उपयोग सामान्यत: पौधों को मरने से बचाने के लिए तब किया जाता है, जब मृदा में जल की मात्रा काफी कम हो गई हो।

पौध संख्या एवं अंतराल

शुष्क क्षेत्र में मृदा जल की कमी के कारण इसका प्रभाव बीज अंकुरण पर पड़ता है। इसलिए इन क्षेत्रों में सिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा बीज दर कुछ मात्रा में बढ़ाकर बुआई की जाती है। जब पौधों की बढ़वार होती है तब प्रति क्षेत्र पौधा संख्या अधिक होने पर मृदा जल का ह्रास अधिक होता है और पौधों की उत्पादन क्षमता को प्रभावित करता है। इससे बचने के लिए फसलों को उनकी बढ़वार एवं फैलाव स्थान को ध्यान में रखकर निश्चित अंतराल पर प्रतिक्षेत्र पौध संख्या भी सिंचित क्षेत्र की अपेक्षा कम कर लेना चाहिए। इससे फसलों को कम मृदा आर्द्रता पर प्रतिक्षेत्र कम पौध संख्या होने से उपलब्ध जल का पर्याप्त मात्रा में वितरण हो सके। ■

अरहर की उन्नत प्रजाति 'आशा मालवीय 406'

बीएचयू कृषि विज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों ने अरहर की एक ऐसी प्रजाति विकसित की है, जो देखने में चने व मिर्च के पौधे जैसी है। बीएचयू में इसकी खेती शुरू की जा चुकी है। इसके पौधे की ऊंचाई 60 सें.मी. व शाखाएं और फलियां अधिक होती हैं। अभी भी पौधे को और छोटा करने की कोशिश जारी है (लगभग 30 सें.मी. तक), जिससे यह चने व मिर्च की तरह कम जगह में अधिक उत्पादन कर सके।

इस बौनी प्रजाति को बोने के लिए एक हैक्टर में सिर्फ 8 से 10 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है, जबकि प्रचलित प्रजाति में 20 से 25 कि.ग्रा. बीज लगता है। इसमें देखरेख के दौरान और तुड़ाई के समय पौधे टूटने का खतरा नहीं रहता है। अरहर की इस प्रजाति का नाम *आशा मालवीय 406* रखा गया है। इसके इतने छोटे होने की वजह से आंधी व पानी से इसको ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचता और फूल भी नहीं गिरते तथा फलियां ज्यादा लगती हैं।

इसका उत्पादन बलुई व दोमट मृदा में किया जाता है। एक हैक्टर में 20 कि.ग्रा. बीज की खपत में 35 से 40 क्विंटल उत्पादन होता है। फूल लगने के दौरान केवल एक बार डॉक्साकार्ब व स्पाइनोसेंड दवा का छिड़काव कर सकते हैं। इस नए पौधे में रोग प्रतिरोधक क्षमता काफी अधिक है। सामान्य अरहर के पौधे में जितना अपशिष्ट निकलता है उसका इसमें 40 प्रतिशत ही निकलता है। इससे मृदा का पोषण व्यर्थ नहीं जाता। देश में नई प्रजातियों व वातावरण के अनुकूल होने की वजह से दलहन का सालाना 24 मिलियन टन से ज्यादा उत्पादन हो रहा है। यह उपभोग से ज्यादा है। इससे देश अब दलहन के निर्यात की स्थिति में पहुंच चुका है। ■

ब्रॉयलर चूजों की देखरेख एवं प्रबंधन

राम निवास
विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन), कृषि विज्ञान केन्द्र, पोकरण-345021,जैसलमेर (राजस्थान)

" भारत में मुर्गीपालन 8 से 10 प्रतिशत की वार्षिक औसत दर से विकसित हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप भारत, अब विश्व का तीसरा सबसे बड़ा अंडा उत्पादक तथा मांस का 5वां शीर्ष उत्पादक देश हो गया है। हमारे बेरोजगार युवक कृषि व्यवसायों को तेजी से अपना रहे हैं। इसका प्रमुख कारण इनसे होने वाला अधिक लाभ है। मुर्गीपालक इस व्यवसाय को अपना तो लेते हैं, लेकिन इसके प्रबंधन की जानकारी के अभाव में इसका ठीक से प्रबंध नहीं कर पाते हैं। मुर्गीपालकों को चाहिए कि वे प्रारंभ से ही चूजों की देखरेख व मुर्गीशाला पर विशेष ध्यान दें। ब्रॉयलर (मांस वाली मुर्गियां) फार्मिंग का मतलब होता है कि आप 30-36 दिनों में मुर्गियों को बाजार में बेच दें। मुर्गीपालन व्यवसाय में चूजों की देखरेख का काम महत्वपूर्ण होता है। मुर्गीपालकों को उदाहरण के लिए 1000 चूजों को खरीदना है, तो इनको एक साथ नहीं लेकर 300-300 चूजों को एक-एक हफ्ते के अंतराल पर लेना चाहिए। इससे मार्केटिंग की समस्या नहीं आती है। चूजों का चयन करते समय विशेष ध्यान उनकी नस्ल पर भी दिया जाना चाहिए। "

जिस कमरे में चूजे रखने हों, वे चूजे आने से पहले कीटाणुरहित हो जाने चाहिए। बाजार में कई कीटाणुनाशक दवाइयां उपलब्ध हैं जैसे कि फोमिलीन, चूना इत्यादि। इसके बाद बात आती है बिछावन (डीप लिटर) की। इसके लिए लकड़ी के बुरादे या पुआल का इस्तेमाल करना चाहिए। अपनी आवश्यकतानुसार (300 ग्राम प्रति चूजा) पहले से इसको ले आयें ताकि वहां पर उनको रख सकें। इसके साथ-साथ हमें एक ब्रूडर बनाना होता है। इसके लिए हमारे पास कार्टून बॉक्स होने चाहिए। दूसरा तापमान को संचालित करने के लिए हमारे पास 100-100 वॉट के 3-4 बल्ब (आवश्यकतानुसार) होने चाहिए। इसके अलावा फीडर (3-4 प्रति 100 चूजों पर) और पानी के बर्तन (2-3 प्रति 100 चूजों पर) कीटाणुरहित होने चाहिए। यदि बल्ब लगाने के बाद भी सभी चूजे ब्रूडर में एक साथ एक ही जगह रह रहे हैं तो इसका मतलब है कि चूजों को ठंड लग रही है। इन परिस्थितियों में बल्ब और बड़ा लगाना चाहिए। एक आदर्श तापमान वह होता है, जिसमें कि सभी चूजे ब्रूडर में एक समान फैले हुये हों। ठंड से बचाने के लिए परदे लगा देने चाहिए। ये परदे खिड़की से आधा

ब्रॉयलर मुर्गियों में आहार प्रबंधन

प्री स्टार्टर राशन में प्रोटीन की मात्रा 22-24 प्रतिशत होनी चाहिए। इसे शुरू से लेकर 8 दिनों तक दिया जाता है। राशन बनाने के लिए निम्नलिखित तत्वों (बाजार में उपलब्धता के अनुसार) को शामिल किया जा सकता है:

- मक्का = 50 प्रतिशत
- खली = 7 प्रतिशत
- खनिज मिश्रण = 1 प्रतिशत
- नमक = 1 प्रतिशत
- सोयाबीन मील =30 प्रतिशत
- राइस पॉलिश्ड = 10 प्रतिशत
- प्रतिशत सैल पाउडर = 1 प्रतिशत

ब्रॉयलर मुर्गीपालन के बाड़े

सारणी 1. ब्रॉयलर मुर्गियों के विभिन्न रोग एवं उपचार

अवस्था	रोग	टीकाकरण
पहला दिन	मैरिक्स	एचवटी वैक्सीन (0.2 मि.ली.) चमड़ी के नीचे
दूसरे से पांचवें दिन	रानीखेत	एफ 1 लसोटा टीका
14वें दिन	गम्बोरो रोग	आईबीडी नामक टीका, एक बून्द आंख में दें
21वें दिन	चेचक	चेचक टीका 0.2 मि.ली., चमड़ी के नीचे
28वें दिन	रानीखेत	एफ 1 लसोटा टीका
63वें दिन (नौवां सप्ताह)	रानीखेत	बूस्टर टीका 0.5 मि.ली., पंख के नीचे
84वें दिन (बारहवां सप्ताह)	चेचक	चेचक टीका 0.2 मि.ली., दवा चमड़ी के नीचे

चिक स्टार्टर राशन

इसमें प्रोटीन 20-22 प्रतिशत और ऊर्जा की मात्रा 2800 Kcal ME/kg होनी चाहिए। इसको 8 से लेकर 21 दिनों तक दिया जाता है। राशन बनाने के लिए निम्न लिखित तत्वों को शामिल किया जा सकता है:

मक्का = 55 प्रतिशत

सोयाबीन मील = 25 प्रतिशत

खली = 6 प्रतिशत

राइस पॉलिश्ड = 10 प्रतिशत

खनिज मिश्रण = 1 प्रतिशत

सैल पाउडर = 1 प्रतिशत

नमक = 1 प्रतिशत

चिक फिनिशर राशन: इसमें प्रोटीन 18-20 प्रतिशत और ऊर्जा की मात्रा 2900 Kcal ME/kg होनी चाहिए। इसको 21 से लेकर 35 दिनों तक दिया जाता है। राशन बनाने के लिए निम्नलिखित तत्वों को शामिल किया जा सकता है:

मक्का = 60 प्रतिशत

सोयाबीन मील =20 प्रतिशत

खली = 6 प्रतिशत

पॉलिश्ड =10 प्रतिशत

खनिज मिश्रण = 1 प्रतिशत

सैल पाउडर = 1 प्रतिशत

नमक = 1 प्रतिशत

सारणी 2. ब्रॉयलर चूजों का विकास

दिन	औसत वजन (ग्राम)	फीड ग्रहण (ग्राम)	एफसीआर
7वें दिन	170	150	0.88
14वें दिन	450	500	1.11
21वें दिन	830	1050	1.26
28वें दिन	1250	1800	1.44
35वें दिन	1800	2850	1.58
42वें दिन	2350	4000	1.70

फीट छोड़कर लगाने चाहिए, ताकि घुटन की समस्या न हो। इस समय सबसे अच्छे कॉब 400 नस्ल के चूजे चल रहे हैं। यह चूजा लगभग 30-36 दिनों में 1.6 कि.ग्रा. से 1.8 कि.ग्रा. का हो जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आप शुरूआती सप्ताह में जितनी अच्छी तरह से चूजों की देखभाल करेंगे उतना ही अधिक फायदा होगा। फार्म पर 2-5 प्रतिशत एक सामान्य मृत्यु दर मानी जाती है। इससे ज्यादा फार्म पर मृत्यु दर नहीं होनी चाहिए। जब आप चूजा लाते हैं तो आप उसको दूसरे दिन कोई भी मल्टीविटामिन दें। इसके साथ-साथ मुर्गीपालक को विटामिन 'ई' और सेलेनियम 5 ग्राम प्रति 50 चूजों की दर से शुरूआती हफ्ते में 2-3 बार इस्तेमाल करनी चाहिए। इसको दोबारा 10-15 दिनों के अंतराल पर प्रयोग करना चाहिए। जब तक मुर्गियों में रोग का लक्षण नहीं दिखे तब तक किसी भी एंटीबायोटिक का प्रयोग न करें। मुर्गीपालकों को लकड़ी के बुरादे पर पेपर बिछा देने के बाद पहले उनको दाना नहीं देना चाहिए अपितु पहले गुड़ या ग्लूकोज का घोल दें और इसके 30 मिनट बाद में मक्के का दलिया देना चाहिए। एक दिन की आयु के चूजों को ऊर्जा की आवश्यकता बहुत अधिक होती है। ऐसा देखा गया है कि चूजे बीट को (लिटर पेपर जो कि लकड़ी के बुरादे पर बिछाया हुआ है) पर करते हैं, और इसी बीट को खा जाते हैं। इससे भारी संख्या में चूजों की मृत्यु देखने को मिलती है। इसके लिए सामान्यत: शुरू के 2-3 दिनों तक पेपर को बदलते रहना चाहिए।

चूजों की देखरेख

व्यावसायिक नस्लों के एक दिन की आयु के चूजे बाजार में उपलब्ध होते हैं। प्रथम सप्ताह में चूजों को 95^0 फारेनहाइट तापमान की जरूरत होती है। बाद में हर सप्ताह 5^0 फारेनहाइट तापमान कम करते रहना चाहिए। पांच सप्ताह बाद में चूजों को गर्मी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अत: बल्ब हटा देना चाहिए। इसके अलावा कोक्सिडीओसिस के बचाव के लिए डीप लिटर में नमी की मात्रा (20-25 प्रतिशत) ज्यादा नहीं होने दें। यदि मुर्गियां बीट में खून का स्राव करती हैं तो यह रोग का लक्षण है। इसके इलाज के लिए उस बीट को फेंक दें और मुर्गियों को समूह से अलग कर दें तथा अम्प्रोलियम दवा का प्रयोग करें।

मशीनों द्वारा धान की बुआई, रोपाई एवं रोगों का प्रबंधन

अनुराग पटेल, एन. एस. चंदेल, प्रभाकर शुक्ला और **पाटील अमोल माधव**
भाकृअनुप-केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, नबी बाग, बैरसिया रोड, भोपाल-462038 (मध्य प्रदेश)

"विश्व में भारत सर्वाधिक धान उत्पादन करने वाले देशों में दूसरे स्थान पर है। प्रमुख राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तमिलनाडु, केरल और आंध्र प्रदेश में मुख्य रूप से धान की खेती होती है। देश में धान की खेती लगभग 43 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती है। देश में कुल खाद्यान्न उत्पादन का लगभग 40 प्रतिशत धान है। आबादी के लगभग 75 प्रतिशत हिस्से का भोजन भी चावल ही है। धान फसल की खाद्य सुरक्षा में एक अहम भूमिका है। यह खरीफ की फसल है और इसके लिए नम एवं गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। इस कारण धान की फसल पर अनेक रोगों का प्रकोप होता है। फसल को कम हानि पहुंचाने वाले कीट भी काफी हानि पहुंचाने लगते हैं। आजकल की समस्याएं प्रदूषित वायुमंडल, बढ़ता तापमान, कार्बन डाइऑक्साइड, भू-क्षरण, मृदा के साथ-साथ पानी स्रोत तथा रोग व खरपतवार से देश में धान की फसल बुरी तरह प्रभावित होती है। इससे हमारे देश की खाद्य सुरक्षा की समस्या और जटिल होती जा रही है।"

प्राकृतिक संसाधनों का लगातार ह्रास होता जा रहा है, क्योंकि संसाधनों का समुचित प्रयोग नहीं हो पा रहा है। देश में कृषि आज भी पिछड़ी हुई है। आधुनिक तकनीकी एवं मशीनीकरण का अभाव होना इसके प्रमुख कारण हैं। इसके अलावा देश के किसानों में जागरूकता की कमी है। देश की लगभग 65 प्रतिशत वर्षा आधारित कृषि है। वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र में फसल उत्पादन कर पाना भी चुनौती है। बदलते हुए वातावरण में इन सब समस्याओं से निदान पाना हम सबके लिए मुश्किल होता जा रहा है। इनमें खरपतवार एवं रोग से लगभग 30-70 प्रतिशत धान की फसल क्षतिग्रस्त हो जाती है। फसलों की बुआई समय से करने पर श्रम, जल, ईंधन की बचत के साथ-साथ खरपतवारों का प्रकोप कम एवं रोगों में कमी होता है इसके अलावा उत्पादन एवं आय परंपरागत विधि की तुलना में अधिक प्राप्त होती है।

इन सभी मुद्दों को ध्यान में रखते हुए धान की बुआई एवं रोपाई के लिए उपयुक्त मशीनरी तथा उसमें उत्पन्न खरपतवार एवं रोग प्रबंधन की रोकथाम का लेख में विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

धान फसल उगाने की विधियां

धान की फसल विभिन्न विधियों द्वारा उगाई जाती हैं। यहां पर सिर्फ तीन प्रायोगिक विधियों का वर्णन किया जा रहा है:

- एस.आर.आई. पद्धति
- धान की सीधी बुआई (एरोबिक्स राइस)
- स्वचालित मशीन द्वारा धान की रोपाई

सारणी 1. यंत्र का संक्षिप्त विवरण

जीरो ट्रिलड्रिल मशीनरी (9 फरो)	
फॉर टाइप	टी-टाइप फरो ओपनर
मॉडल	एन.एम.सी.पी.-जेड.टी.
पॉवर शक्ति	ट्रैक्टर
कार्य करने की चौड़ाई, मि.मी.	1850
टाइन से टाइन की दूरी, मि.मी.	200
मशीन पैरामीटर लंबाई, मि.मी. चौड़ाई, मि.मी. ऊंचाई, मि.मी.	 2150 1320 1250
बीज की गहराई, मि.मी.	40-60
बीज की संख्या/हिल	03-05
बीज दर, किलो/हैक्टर	55-60
मशीन की कीमत (रु.)	50,000

एस.आर.आई. पद्धति से धान उगाना

एस.आर.आई. पद्धति में धान की नर्सरी

धान की नर्सरी बनाने के लिए जल स्रोत के निकट की जगह का चुनाव करते हैं, कोशिश करते हैं कि मुख्य खेत के पास की जगह हो। 100 वर्गमीटर की नर्सरी 1 हैक्टर खेत की रोपाई के लिए पर्याप्त होती है। इसके लिए मृदा+कम्पोस्ट (गोबर की खाद+1.5 कि.ग्रा. डाई अमोनियम फॉस्फेट+2 कि.ग्रा.एन.पी.के. खाद) के मिक्स्चर की आवश्यकता होती है। एक लकड़ी का फ्रेम जो 1 मीटर लंबा, 0.5 मीटर चौड़ा तथा 4 सें.मी. मोटाई के चार भागों से बना होता है, उसपर पॉलीथीन शीट रखकर उसमें मिक्स्चर भरते हैं। फिर 12 घंटे तक भिगोये हुए बीजों को 90 से 100 ग्राम मात्रा की दर से अच्छी तरह मिक्स्चर में मिला देते हैं। इसके बार 5 मि.मी. मोटाई की सूखी मृदा से बीज को ढक देते हैं। उसके तुरन्त बाद हजारे से फुहारे के साथ अच्छी तरह भिगोकर लकड़ी के फ्रेम को हटा देते हैं। आगे की प्रक्रिया इसी तरह चलती रहती है। नर्सरी में पानी, हजारे द्वारा दिन में 2 या 3 बार डालते हैं। वर्षा के पानी से 5-6 दिनों तक नर्सरी को बचाये रखते हैं। इस प्रकार 10 से 12 दिनों की पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

एस.आर.आई. पद्धति में कोनो वीडर द्वारा निराई एंव धान की फसल

धान की सीधी बुआई में खरपतवार प्रबंधन

धान की बुआई से पूर्व खरपतवारों का प्रबंधन करना अति आवश्यक है। खरपतवारों को नष्ट करने के लिए खरपतवारनाशी दवाओं का प्रयोग किया जाता है। इन्हें नष्ट करने के लिए पैराक्वाट 500 ग्राम या ग्लाइफोसेट 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर को 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए तथा 2-3 दिनों के बाद मशीन से बुआई कर देनी चाहिए। धान की बुआई के बाद खरपतवार काफी ज्यादा उगते हैं। इनकी रोकथाम के लिए धान की बुआई के बाद पेन्डीमिथेलिन एक कि.ग्रा. सक्रिय तत्व की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव करते समय मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी रहनी चाहिए तथा समान रूप से छिड़काव सारे खेत में करना चाहिए। ये खरपतवारनाशी, खरपतवारों को अंकुरित होते ही मार देते हैं। बाद में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार या अन्य जैसे मोथा घास के नियंत्रण के लिए ऑलमिक्स मात्रा 4.00 ग्राम सक्रिय तत्व को 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से काफी लाभ मिलता है।

एस.आर.आई. पद्धति द्वारा धान की खेती

एस.आर.आई. पद्धति द्वारा बीज व पानी दोनों की काफी बचत होती है। इसमें 5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। जहां पर जल भराव अधिक नहीं होता है उस जगह का चुनाव कर इस विधि से धान

सारणी 2. यंत्र का संक्षिप्त विवरण

हैप्पी टर्बो सीडर मशीनरी (9 फरो)	
फॉर टाइप	टी-टाइप फरो ओपनर
मॉडल	एन.जेड.टी.डी.-एच.एस.
पॉवर शक्ति	ट्रैक्टर
कार्य करने की चौड़ाई (मि.मी.)	1850
टाइन से टाइन की दूरी (मि.मी.)	200
मशीन पैरामीटर लंबाई (मि.मी.) चौड़ाई (मि.मी.) ऊंचाई (मि.मी.)	 2,200 2,220 1,490
बीज की गहराई (मि.मी.)	40.60
बीज की संख्या/हिल	03.05
बीज दर (किलो/है.)	55.60
मशीन की कीमत (रु.)	1,50,000

हैप्पी-टर्बोसीडर द्वारा धान की बुआई

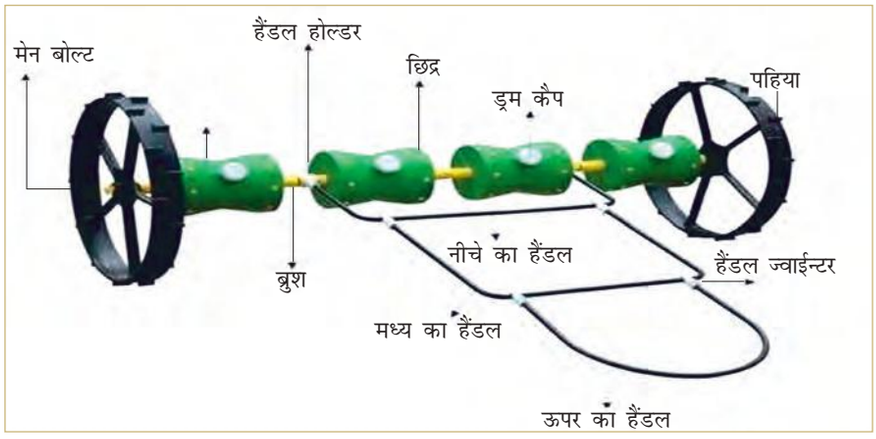

ड्रम सीडर मशीन की रूपरेखा

की खेती करते हैं। पहले खेत पलेवा कर 4-5 दिनों के उपरांत एक-एक पौध को 25 × 25 सें.मी. की दूरी पर हाथ द्वारा स्थापित करते हैं। सघन पद्धति से धान उगाने के लिए खेत को नम रखते हैं। ध्यान रहे कि खेत पूरी तरह पानी से भरा नहीं रहना चाहिए और न ही सूखा रहना चाहिए। उसमें हमेशा नमी बनी रहनी चाहिए, जिससे कि मृदा जीवाणुओं की अत्यधिक संख्या बढ़ सके, खासकर केंचुओं की संख्या। इसके द्वारा पौधों को वायु संचार के साथ-साथ पोषक तत्व की उपलब्धता बढ़ जाती है। फलस्वरूप पौध की वृद्धि तीव्र हो जाती है और उपज 20-25 प्रतिशत अधिक प्राप्त होती है। पोषक तत्वों की मात्रा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश 120:60:60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रखते हैं। रोपाई के समय खेत में जल भराव नहीं होना चाहिए। अधिक पानी इकठ्ठा होने पर जल निकास का उचित प्रबंध करना चाहिए। आवश्यकतानुसार फसल की सिंचाई करते रहना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए पौध की दूरी 25 × 25 सें.मी. होने के कारण कोनो वीडर द्वारा निराई करते हैं। इससे घास नियंत्रित हो जाती है और फसल की गुड़ाई भी हो जाती है। इसके फलस्वरूप पौध विकास अच्छा होता है और पैदावार भी अच्छी प्राप्त होती है।

सारणी 3. यंत्र का संक्षिप्त विवरण

ड्रम सीडर मशीन	
ड्रम की संख्या	6
ड्रम की लंबाई (मि.मी.)	250
ड्रम का व्यास (मि.मी.)	180
छेद का व्यास (मि.मी.)	10
ड्रम में छेद की संख्या	28
लाईन की संख्या	12
पंक्ति से पंक्ति की दूरी (मि.मी.)	180
ड्रम कैप साइज (मि.मी.)	130×110
कैप का आकार	आयताकार
हैंडल की लंबाई (मि.मी.)	1,000
हैंडल की सामग्री	जी.आई. पाइप
हैंडल पाइप व्यास (मि.मी.)	21
ड्राइव व्हील व्यास (मि.मी.)	560
फील्ड क्षमता (हैक्टर/घंटा)	0.15
फील्ड दक्षता (प्रतिशत)	50-55
बीज दर/हिल	2-3
बीज दरकि.ग्रा./हैक्टर	60
मशीन की कीमत लगभग (रुपये)	8,000 से 10,000

धान की सीधी बुआई

सीधी बुआई विधि से किसान को खेत को तैयार करने एवं धान की नर्सरी डालने की जरूरत नहीं पड़ती है। खेत में हल्की सी नमी रहने पर जीरो टिलेज (बिना जुताई) विधि से धान की सीधी बुआई कर सकते हैं। इससे धान की बुआई में कम लागत आती है और पानी, श्रम एवं ईंधन की बचत होती है। धान की सीधी बुआई तकनीक के प्रमुख

ड्रम सीडर मशीन से धान की बुआई

ड्रम सीडर का प्रयोग सीधे गीले मैदान में अंकुरित धान की बुआई के लिए किया जाता है। इसमें प्रत्यारोपण की कोई आवश्यकता नहीं है। यह श्रमिकों द्वारा खींचा जाने वाला उपकरण है। इसमें एक समय में 18 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति अंतर की 12 पंक्तियां शामिल होती हैं। यह प्लास्टिक सामग्री से बना है। कृषि क्षेत्र की व्यापक जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से सर्वोच्च गुणवत्ता वाले धान ड्रम सीडर धान की बुआई करने के लिए उपयोगी बागवानी उपकरण है। यह कुशल पेशेवरों की देखरेख में बेहतरीन गुणवत्ता वाले घटकों और तकनीकों का उपयोग करके डिजाइन और निर्मित किया गया है।

ड्रम सीडर मशीन का उपयोग करते हुए

ड्रम सीडर मशीन द्वारा धान की बुआई करने के लिए सबसे पहले खेत में पानी भरकर दो से तीन बार पलेवा (गीली जुताई) करके खेत को अच्छी तरह पाटा लगाकर समतल कर लेते हैं। इसके उपरांत पलेवा किए हुए खेत को 8 घंटे के लिए छोड़ देते हैं। धान की बुआई करने से कम से कम 6 घंटे पहले खेत से पानी को निकलने दें। बुआई के समय खेत में लगभग 1 सें.मी. पानी की केवल पतली परत रहनी चाहिए। खेत में पानी ज्यादा होने पर बीज पानी के साथ बहने लगते हैं। बुआई करने से पूर्व बीज को 10 से 12 घंटे भिगोकर पानी से निकाल लें। उसके बाद जूट के बोरे में भरकर रख दें या जमीन पर रखकर कपड़े से ढक दें, जिससे बीज 10 से 12 घंटे में अंकुरित हो जाएगा। बीज को ड्रम सीडर के बॉक्स में एक-तिहाई भरकर बॉक्स को बंद कर दें। इसके पश्चात ड्रम सीडर को सामान्य गति (1 किमी/घंटा) से मैन्युअल रूप से खींचें। इस मशीन द्वारा बुआई दो श्रमिकों द्वारा आसानी से की जा सकती है। इसके द्वारा ईंधन, समय, श्रम, लागत आदि की बचत होती है।

मैट टाईप नर्सरी

सारणी 4. यंत्र का संक्षिप्त विवरण

स्वचालित धान रोपाई मशीन	
आकार (लंबाई × चौड़ाई × ऊंचाई)	2410 × 2130 × 300
इंजन शक्ति (किलोवाट)	2.4
भार (कि.ग्रा.)	300-330
ईंधन	डीजल
शीतलन प्रणाली	हवा द्वारा
चलाने की व्यवस्था	एक व्हीलचालित
पंक्ति संख्या	8
पंक्ति से पंक्ति की दूरी (मि.मी.)	230.8
पौध से पौध की दूरी (मि.मी.)	120. 150
प्रत्यारोपण, स्ट्रोक की आवृत्ति प्रति मिनट	238
रोपाई की गति (किमी. प्रति घंटा)	1.58-1.94
रोपाई की गहराई (मि.मी.)	30-50
पौध की संख्या (मी^{2})	33-35
नर्सरी संख्या (प्रति हिल)	3-5
फील्ड क्षमता (हैक्टर प्रति दिनों)	0.8-1.0
ईंधन उपयोग (लीटर/हैक्टर)	6-8
ग्राउंड व्हील, व्यास (मि.मी.)	700
लग्स की संख्या	15
मशीन की कीमत (रुपये)	1,05,000

लाभ निम्नलिखित हैं:

- सीधी बुआई से 25 से 30 प्रतिशत पानी की बचत होती है। इस विधि से धान की बुआई करने पर खेत में लगातार पानी भरने की आवश्यकता नहीं होती है।
- इस विधि से श्रम एवं समय की बचत होती है और रोपाई करने की जरूरत नहीं पड़ती है।
- धान की नर्सरी उगाने और रोपाई का खर्च बच जाता है।
- इस तकनीक से रोपाई की तुलना में ईंधन की बचत होती है।
- सीधी बुआई से किसान मशीन में खाद व बीज डालकर आसानी से बुआई कर सकता है।
- रोपाई विधि की तुलना में सीधी बुआई विधि से धान की खेती करने में बीज की मात्रा कम लगती है।
- इस विधि से धान की बुआई सीधे खेत में की जाती है तथा इससे समय, श्रम, संसाधन एवं लागत की बचत होती है।

जीरो टिल ड्रिल मशीन से धान की बुआई

जीरो टिलेज तकनीक का खेती की लागत को कम करने, फसलों की बुआई समय पर करने तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। संरक्षित खेती में फसल अवशेषों का अधिकांश भाग मृदा सतह पर छोड़ दिया जाता है, जिससे न केवल फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है, बल्कि पर्यावरण में सुधार एवं भूमि की उर्वराशक्ति में भी सुधार होता है। इससे अच्छी नमी में बुआई की गयी फसलों का जमाव उचित होता है। साथ-साथ सिंचाई में कम पानी की आवश्यकता होती है। जीरो ट्रिल कम फर्टिड्रिल मशीन से धान की बुआई बिना जुताई के की जाती है। जीरो टिल ड्रिल की प्रमुख निम्न विशेषताएं हैं: इसके प्रयोग से 75 से 85 प्रतिशत ईंधन एवं समय की बचत होती है और खरपतवार का कम जमाव होता है। इस मशीन द्वारा एक हैक्टर प्रति घंटा बुआई की जा सकती है। इससे खेत तैयार करने की लागत में 2500 से 3000 रुपये प्रति हैक्टर की दर से बचत होती है। परंपरागत विधि की तुलना में शून्य जुताई विधि से करीब 5,000-6,000 रुपये तक शुद्ध लाभ प्राप्त होता है।

हैप्पी-टर्बोसीडर मशीन से धान की बुआई

हैप्पी-टर्बोसीडर मशीन ट्रैक्टर के पी. टी.ओ. शॉफ्ट द्वारा चालित मशीन है। रोटरी ब्लेड की सहायता से खरपतवार को हटा कर बीच में फरो-ओपनर द्वारा इससे अच्छी तरह से बुआई की जाती है। फरो-ओपनर के आगे के फसल अवशेष और खरपतवार को हटा कर लाइनों के बीच में बुआई करने से, कूंड़ में बीज एवं खाद का समान रूप से तथा उचित गहराई में पड़ने से, बीज का जमाव अच्छा होता है। इस प्रकार फसल की पैदावार भी अच्छी होती है। इस मशीन के उपयोग के लिए 35 से 40 अश्वशक्ति के ट्रैक्टर की आवश्यकता होती है। इस मशीन द्वारा बिना जुते खेत में (शून्य कर्षण) बुआई की जाती है। मशीन में दो इकाइयां होती हैं। आगे की तरफ फसल अवशेष प्रबंधन और पीछे की तरफ बुआई उपयोगी भाग जिसके माध्यम से खाद और बीज को उचित गहराई (लगभग 5-6 सें.मी.) पर मिट्टी में डाला जाता है। इस मशीन से बुआई करने से खरपतवारों में 15 से 20 प्रतिशत की कमी पाई जाती है। इसके प्रयोग करने से उपयोगी प्राकृतिक संसाधनों (ऊर्जा, श्रम, डीजल इत्यादि) में 50-60

स्वचालित रोपाई मशीन

प्रतिशत तक की बचत होती है। इसका प्रयोग करने पर 10-12 लीटर प्रति हैक्टर डीजल की खपत होती है। एक हैक्टर बुआई करने में 5-6 घंटे समय की आवश्यकता पड़ती है। इस मशीन (9-टाईन) की कीमत लगभग 1.5 रुपये लाख है।

सारणी 5. धान के प्रमुख खरपतवार

खरपतवार	खरपतवार का नाम
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	केना, अमेरिकन घास, भृंगराज, पत्थर चट्टा, हुरहुर, सफेद मुर्ग, लहसुआ
संकरी पत्ती वाले खरपतवार	बड़ी साई, छोटी साई, मुटमुर, मकड़ा, जंगली मंडुआ, सियुर, चाइनीज घास, दूब, बसवट
मोथा कुल के खरपतवार	मोथा, गलमोथा, जलमोथा

स्वचालित मशीन द्वारा धान की रोपाई

मैट टाइप नर्सरी तैयार करना

मैट टाइप नर्सरी उगाने के अंतर्गत मृदा को अच्छी तरह बारीक कर लेते हैं, फिर उसमें एक चौथाई सड़ी हुई गोबर की खाद अच्छी तरह मिला लेते हैं। इसके उपरांत 5×1.2 मीटर की क्यारी बनाकर उसमें उसी आकार की 0.50 गेज की मोटाई वाली पॉलीथीन शीट छिद्र करके क्यारी के ऊपर बिछा देते हैं। उसके उपरांत पॉलीथीन शीट पर 2 से 2.5 सें.मी. खाद व मिट्टी के मिश्रण को डाल देते हैं। मिट्टी को अच्छी तरह से समतल करके फैला देते हैं। इसके बाद पानी का छिड़काव करके 10 मिनट के लिए छोड़ देते हैं। बाद में प्रति क्यारी 5 कि.ग्रा. अंकुरित बीज को मृदा की ऊपरी सतह पर समान रूप से छिड़क देते हैं। इसके पश्चात 2 से 5 मि. मी. मिट्टी और गोबर के खाद के मिक्स्चर को अंकुरित बीज पर फैला देते हैं, जिससे बीज अच्छी तरह से ढक जाये। फिर ऊपर से पानी का छिड़काव प्रति दिन तीन बार दो से तीन दिनों तक करते रहते हैं। करीब चार से पांच दिनों में धान के बीजों का अच्छी तरह से जमाव हो जाने पर नर्सरी की दिन में दो बार सिंचाई करते रहते हैं। नर्सरी 20 से 22 दिनों की हो जाने पर रोपाई के लिए उपयुक्त हो जाती है। जब भी धान की नर्सरी पीली दिखाई देने लगे तो यूरिया तथा जिंक सल्फेट का घोल बनाकर समान रूप से दो बार छिड़काव कर देते हैं। इससे पौधे पूर्ण विकसित और स्वस्थ रहते हैं।

जीरो टिल ड्रिल मशीन द्वारा धान की बुआई

स्वचालित मशीन द्वारा धान की रोपाई

स्वचालित मशीन द्वारा धान की रोपाई करने के लिए सबसे पहले खेत में पानी भरकर दो से तीन बार पलेवा (गीली जुताई) करके खेत को अच्छी तरह पाटा लगाकर समतल कर लेते हैं। इसके उपरांत पलेवा किए हुए खेत को 12 घंटे के लिए छोड़ देते हैं। धान की रोपाई करते समय खेत में 3 से 5 सें.मी. पानी भरकर ही मशीन द्वारा रोपाई करनी चाहिए। खेत में पानी बिल्कुल न होने पर मशीन ठीक प्रकार से नहीं चल पाती है। यदि पानी ज्यादा हो जाये तो मशीन द्वारा मृदा में धान की पौध कम स्थापित हो पाती है। इस प्रकार पौधे पानी के ऊपर ज्यादा मात्रा में तैरने लगते हैं। मशीन द्वारा खेत में रोपाई के लिए एक साथ आठ मैट नर्सरी की आवश्यकता होती है। नर्सरी को मशीन में दिए गए ट्रे सांचे के आकार में काटकर सांचे में रख देते हैं। सुचारू रूप से रोपाई करने के लिए तीन श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इसमें एक मशीन चालक और दो मजदूरों की मैट टाइप नर्सरी को मशीन में बार-बार रखने के लिए

सारणी 6. धान के रोग एवं प्रबंधन

रोग	लक्षण	प्रबंधन
भूरा धब्बा रोग: यह रोग बाइपोलेरिस ओराइजो नामक कवक से होता है। पौधों के अवशेषों द्वारा फैलता है।	इस रोग में पत्तियों पर काले से भूरे अंडाकार धब्बे जो पत्ती के बीच में बनते हैं। अधिक प्रभाव के कारण पत्तियां सूख जाती हैं और दानों पर काले भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं।	• सदैव प्रमाणित बीजों की बुआई करें। • बीज का उपचार थाईरम या बावस्टीन नामक दवा से 20 से 25 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से करें। • खड़ी फसल में मैंकोजेब दवा का 0.25 घोल बनाकर छिड़काव करें।
धान का झुलसा रोग: यह रोग पाईरिसकुलेरिस नामक कवक से होता है। यह धान की फसल लगने वाले मुख्य रोग है।	इस रोग के लक्षण प्राय: पत्तियों, तनों व फलों पर पाये जाते हैं। फसल की रोपाई के 15 दिनों के बाद रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं, जो फसल की परिपक्व अवस्था तक देखे जाते हैं। पत्तियों पर बैंगनी रंग के छोटे-छोटे धब्बे बन जाते हैं। बालियों के ग्रसित भाग टूटकर गिर जाते हैं।	• खेत में पड़े रोगी पौधों को इकट्ठा करके जला दें। • दो-तीन वर्ष तक फसल चक्र अपनायें। • रोग अवरोधी किस्मों का प्रयोग करें। • बावस्टीन की 3 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से प्रयोग करें। • खरीफ फसल पर हिनोसन या बावस्टीन दवा का 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
जीवाणु अंगमारी रोग: यह रोग जैथोमोनास कंपेसिट्रस्पेथावर अराईजी नामक जीवाणु के द्वारा लगता है। यह बीज व भूमिजनित रोग है। यह धान उगाये जाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है।	इस रोग के लक्षण बुआई से 25-30 दिनों के बाद दिखाई देने लगते हैं। इस के कारण पत्तियों का रंग हल्का पीला हो जाता है और पत्तियों पर लहरदार धारी बनती है, जो पत्तियों के दोनों किनारे से आरंभ होकर पर्णछंद तक जाती हैं।	• सदैव स्वच्छ व स्वस्थ बीजों की बुआई का प्रयोग करें। • बीज उपचार के लिए बावस्टीन व थीरम की 3 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से प्रयोग करें। • संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें। • रोग निरोधी किस्मों को उगायें। • खड़ी फसल पर जीवाणुनाशक दवा जैसे स्ट्रेप्टोसाइक्लिन की 1 ग्राम व ब्लाइटोस की 5 ग्राम 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर 10 से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
जीवाणु-जनित कर्णधारी: रोग यह रोग जेंथोंमोनास कम्पेसिट्रसपैथवार आराइजी नामक जीवाणु के द्वारा फैलता है।	इस रोग के लक्षण पत्तियों पर पीले मटमैली धारियों के रूप में प्रकट होते हैं। ये धारियां आपस में पत्ती की शिराओं से मिल जाती हैं, जिससे पत्ती का रंग नारंगी हो जाती है और पत्तियां सूख जाती हैं।	• स्वच्छ व स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें। • खड़ी फसल पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 प्रतिशत का छिड़काव 10 से 15 दिनों के अंतराल पर करें।
पर्णछंद विघलन रोग: यह रोग राइजोक्टोनिया सोलेनाई नामक कवक से लगता है। यह बीज व मृदाजनित रोग है।	इस रोग के लक्षण फसल की पोटरी अवस्था में अधिक दिखाई देते हैं। इसके कारण पोटरी की निचली सतह पर हल्के भूरे, काले रंग के धब्बे बन जाते हैं, जो अनियमित आकार के होते हैं।	• सदैव प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें। • बीज शोधन के लिए बावस्टीन की 3 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें। • रोग अवरोधी किस्मों को उगायें। • संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें।
आभासी कंड रोग: यह रोग नियोवोसिया बारक्लेयाना नामक फफूंद से लगता है। यह बीजजनित रोग है।	बाल काले रंग के पाउडर में बदल जाते हैं, जो कवक के समूह से मिलकर बनते हैं।	• सदैव प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें। • एन.पी.के. का संतुलित उर्वरक प्रयोग करें। • अवरोधी किस्मों को उगायें। • खड़ी फसल पर मैन्कोजेब नामक दवा का 2 प्रतिशत घोलकर बनाकर पुष्प अवस्था में 15 से 20 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
धान का खैरा रोग: यह रोग जिंक तत्व की कमी के कारण होता है।	यह रोग प्राय: 10 से 15 दिनों बाद दिखाई पड़ता है। ग्रसित पत्तियों पर तांबे रंग के धब्बे बन जाते हैं। इससे पौधे बौने रह जाते हैं तथा जड़ों का विकास भी नहीं होता है।	• रोग अवरोधी फसलें उगायें। • खड़ी फसल पर जिंक सल्फेट तथा 1 कि.ग्रा. बुझे चूने को 400 लीटर पानी में घोलकर 15 से 20 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
धान का सफेद रोग: यह रोग लोहे की कमी के कारण होता है।	इस रोग के लक्षण पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों के रंग भूरे से सफेद हो जाते हैं।	• खड़ी फसल में 20 कि.ग्रा. यूरिया को 2 से 5 कि.ग्रा. फेरस सल्फेट या 2 से 5 कि.ग्रा. बुझे हुए चूने के साथ 1000 से 1200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

आवश्यकता पड़ती है। इस प्लांटर से रोपाई करने पर 40 प्रतिशत श्रमिकों की बचत होती है। इसमें 23.8 सें.मी. की पंक्ति से पंक्ति की दूरी होती है। ट्रांसप्लांटिंग की गहराई 2 से 6 सें.मी. होती है। यदि खेत अच्छी तरह तैयार हो तथा मशीन चलाने में किसी प्रकार की तकनीकी खराबी न आये तो इस मशीन के द्वारा प्रति दिन 0.8 से 1.0 हैक्टर धान की रोपाई की जा सकती है।

धान के प्रमुख रोग लक्षण एवं उनका प्रबंधन

धान, भारतीय खाद्यान्नों में सबसे महत्वपूर्ण फसल है। धान की फसल व गुणवत्ता में कमी आने वाले कारकों में रोगों का महत्वपूर्ण स्थान है, जिससे धान के उत्पादन पर भारी प्रभाव पड़ता है। धान की फसल पर लगने वाले कीट रोगों में प्रमुख रूप से भूरा धब्बा रोग, धान का झुलसा, जीवाणुजनित कर्णधारी, कर्ण छंद, विगलन रोग, अंगमारी, कंड, खैरा व सफेद रोग हैं, जो धान उत्पादन करने वाले सभी राज्यों में पाये जाते हैं। ■

फरवरी के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और **एस.एस. राठौर**
सस्य विज्ञान संभाग
भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

फरवरी, जिसे टॉप माघ-फाल्गुन भी कहते हैं, बसंत पंचमी का त्यौहार लेकर आता है। चारों तरफ पीले फूल खिल उठते हैं तथा मौसम में ठंड कम होने लगती है। भारतीय कृषि में रबी फसलों का महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी अच्छी पैदावार लेने के लिए किसानों को मौसम के उतार-चढ़ाव का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। इससे अचानक बढ़ने वाले तापमान से अपनी फसलों की सुरक्षा करना उनके लिए जरूरी हो जाता है। इसके लिए आधुनिक कृषि सस्य विधियों द्वारा सामयिक फसल उत्पादन तकनीकों, विभिन्न सब्जी, फल व फूल, फसलों की देखभाल व उन्नत उत्पादन तकनीकियों, सामयिक फसलों में रोग-कीट प्रबंधन के अलावा बे-मौसमी सब्जी उत्पादन जैसी महत्वपूर्ण जानकारियां फसल उत्पादन बढ़ाने में लाभकारी सिद्ध हो सकती है। इस माह के प्रमुख कृषि कार्य यहां प्रस्तुत हैं।

गेहूं और जौ की देखभाल

- प्रथम तथा अंतिम सिंचाई अपेक्षाकृत हल्की करें। फसल को गिरने से बचाने के लिए बाली निकलने के बाद सिंचाई वायु की गति के अनुसार करें। समय पर बोई गई गेहूं की फसल में फूल आने लगते हैं। इस दौरान फसल को सिंचाई की बहुत जरूरत होती है। गेहूं में समय से बुआई की दर से तीसरी सिंचाई गांठ बनने (बुआई के 60-65 दिनों बाद) की अवस्था तथा चौथी सिंचाई फूल आने से पूर्व (बुआई के 80-85 दिनों बाद) एवं पांचवीं सिंचाई दुग्ध अवस्था (बुआई के 110-115 दिनों बाद) में करें। पछेती या देर से बोई गई गेहूं की फसल में कम अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसलिए फसल में अभी क्रांतिक अवस्थाओं जैसे शीर्ष जड़ें निकलना, कल्ले निकलते समय, बाली आते समय, दानों की दूधिया अवस्था एवं दाना पकते समय सिंचाई करनी चाहिए। मार्च या अप्रैल में अगर तापमान सामान्य से अधिक बढ़ने लगे तो एक या दो अतिरिक्त सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।
- पौधों की उचित बढ़वार एवं विकास के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से पौधों की वृद्धि, जनन क्षमता एवं कार्यिकी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भारतीय मृदा में जस्ते की औसत मात्रा 1 पीपीएम के लगभग पाई जाती है। मृदा में जस्ते की मात्रा 0.5 पीपीएम से कम होने पर इसकी कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। पौधों में जस्ते की कमी की क्रांतिक मात्रा 20 पीपीएम होती है। जस्ता के प्रयोग की मात्रा जस्ते की कमी, मृदा प्रकार एवं फसल प्रकार आदि पर निर्भर करती है। खड़ी फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव 10 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार करना चाहिए। लोहे की कमी या कम कार्बनिक पदार्थ वाली चूनेदार, लोहा-पीलापन एवं क्षारीय मृदा में फसल उत्पादन में मुख्य रूप से बाधा है। मृदा एवं पौधों में इसकी क्रांतिक मात्रा क्रमशः 4.5 एवं 50 पीपीएम है। लोहे की कमी की पूर्ति पर्णीय छिड़काव से भी की जा सकती है। गेहूं, धान, गन्ना, मूंगफली, सोयाबीन आदि में 1-2 प्रतिशत आयरन सल्फेट का पर्णीय छिड़काव, मृदा अनुप्रयोग की अपेक्षा अधिक लाभकारी पाया गया है। मृदा में अनुप्रयोग की मात्रा (50-150 कि.ग्रा./हैक्टर आयरन सल्फेट), पर्णीय छिड़काव की अपेक्षा अधिक होने के कारण मृदा अनुप्रयोग आर्थिक रूप से लाभप्रद नहीं है। लोहे की कमी को दूर करने में आयरन-चिलेट अन्य अकार्बनिक स्रोतों की अपेक्षा अधिक लाभकारी होता है, परंतु महंगे होने के कारण किसान इसका प्रयोग नहीं कर पाते हैं।
- **करनाल बंटः** आजकल गेहूं में टिलिशिया इण्डिका नामक कवक के कारण उत्पन्न इस रोग में थ्रेसिंग के बाद निकले दानों में बीज की दरार के

गेहूं में रतुआ और माहूं का नियंत्रण

- गेहूं की फसल में गेरुई या रतुआ जैसे रोग के लक्षण दिखाई देने पर टेबुकोनेजोल 25 ई.सी. (फोलिकर 250 ई.सी.) या ट्राइडिमिफोन 25 डब्ल्यू.पी. (बेलिटॉन 25 डब्ल्यू.पी.) या प्रॉपीकोनेजोल 25 ई.सी. (टिल्ट 25 ई.सी.) का 0.1 प्रतिशत का घोल बनाकर पत्तियों पर छिड़काव करें। फैलाव तथा रोग के प्रकोप को देखते हुए दूसरा छिड़काव 15-20 दिनों के अंतराल पर करें। बुआई के लिए अच्छे एवं स्वस्थ बीज का ही प्रयोग करें। उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के लिए एच.डी. 2967 ए.एच.डी. 3086, डब्ल्यू.एच. 1105, एच.डी. 3043, एच.डी. 3059 एवं डी.पी.डब्ल्यू. 621-50 आदि प्रजातियों का चुनाव करें।

एच.डी.-2967

- यदि माहूं का प्रकोप हो तथा माहूं को खाने वाले गिडार की संख्या कम हो तो क्वीनालफॉस 25 ई.सी. का एक लीटर या मोनोक्रोटोफॉस 25 ई.सी. का 1.4 लीटर दवा को मिथाइल-ओ-डीमेटान 25 ई.सी. एक लीटर दवा का 600-800 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। गेहूं के खेत में चूहों का प्रकोप होने पर जिंक फॉस्फाइड से बने चारे अथवा एल्यूमिनियम फॉस्फाइड की टिकिया का प्रयोग करें। चूहों की रोकथाम के लिए सामूहिक प्रयास अधिक सफल होता है।

साथ-साथ गहरे भूरे रंग के बीजाणु समूह देखे जा सकते हैं। अत: स्वस्थ एवं निरोगी बीज पैदा करने के लिए बाली निकलते ही 2.0 कि.ग्रा. मैन्कोजेब या 500 मि.ली. प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई.सी.) को 600-800 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर की दर से छिड़काव करें। चूर्णी फफूंद रोग के प्रबंधन के लिए रोग सहिष्णु किस्मों का प्रयोग करें। रोग के आते ही दाने बनने की अवस्था तक 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई.सी.) का पत्तियों पर छिड़काव करें।

- **पर्ण झुलसा:** यह एक जटिल रोग है, जो अल्टरनेरिया ट्रिटिसाइना, पायरेनोफोरा ट्रिटिसाई रीपेंटिस एवं बाइपोलेरिस सोरोकिनियाना द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग में पत्तियों पर बहुत छोटे गहरे भूरे रंग के पीले प्रभामंडल से घिरे धब्बे बनते हैं, जो बाद में परस्पर मिलकर पर्ण झुलसा उत्पन्न करते हैं।इस रोग की रोकथाम के लिए खड़ी फसल में 0.1 प्रतिशत प्रोपीकोनेजोल (टिल्ट 25 ई.सी.) का छिड़काव करें। 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से कार्बोक्सिन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू.पी.) रसायन के साथ बीजोपचार कर बुआई करें। इस रोग की रोकथाम के लिए रोग प्रतिरोधी किस्में उगाएं।
- रस चूसने वाले कीट जैसे चैंपा के लिए इमिडाक्लोप्रिड 200 एस.एल. या 20 ग्राम सक्रिय तत्व का छिड़काव खेत के चारों तरफ दो मीटर बार्डर पर करें। अधिक प्रकोप होने पर इस कीटनाशी का प्रयोग पूरे खेत में करें।
- जौ की फसल में दूसरी सिंचाई गांठ बनने की अवस्था (बुआई के 55-60 दिनों बाद) में और तीसरी सिंचाई दुधिया अवस्था (बुआई के 95-100 दिनों बाद) में करें। जौ की फसल में निराई-गुड़ाई का अच्छा प्रभाव होता है। खेत में यदि कंडुवा रोगग्रस्त बाली दिखाई दे तो उसे निकाल कर जला दें। क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में अधिक संख्या में हल्की सिंचाई देना, ज्यादा गहरी तथा कम सिंचाई देने की अपेक्षाकृत उत्तम माना जाता है। धारीदार या पीला रतुआ पत्तों पर पीले, छोटे-छोटे कील कतारों में, बाद में पीले रंग के हो जाते हैं। कभी-कभी ये कील पत्तियों के डंठलों पर भी पाए जाते हैं। रतुआरोधी प्रजातियों का प्रयोग करें। काला रतुआ लाल भूरे से लेकर काले रंग के लंबे कील पत्तियों के डंठल पर पाये जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए प्रति हैक्टर 2 कि.ग्रा. जिनेब (डाइथेन जेड-78) का छिड़काव करें। 500-600 लीटर घोल एक हैक्टर क्षेत्रफल के लिए काफी रहता है।
- जौ एवं गेहूं के जिन खेतों में अधिक वर्षा का पानी भर जाता है, उनमें पानी निकालने के बाद नाइट्रोजन के लिए सी.ए.एन. के डालने से कुछ मात्रा में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। अधिक पानी के भर जाने से ऑक्सीजन की कमी हो जाती है, इसलिए सी.ए.एन. की सिफारिश की जाती है।

शीतकालीन मक्का

- रबी मक्का की फसल में तीसरी सिंचाई बुआई के 75-80 दिनों में तथा चौथी सिंचाई 100-110 दिनों बाद करें। संकर प्रजातियों के लिए 20 कि.ग्रा. व संकुल प्रजातियों के लिए 25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर बुआई के लिए आवश्यकता होती है। कतार से कतार एवं पौधे से पौधे के बीच की दूरी 60.70×20.25 सें.मी. रखनी चाहिए। मक्के की फसल में नाइट्रोजन 120 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 60 कि.ग्रा. तथा पोटाश 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दर से प्रयोग करें। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा व फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय प्रयोग करें।
- मक्के की फसल में भुट्टे में दाना भरते समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए अन्यथा पौधों की बढ़वार के साथ-साथ उपज में भी कमी हो जायेगी। मक्के की फसल में तनाबेधक कीट और पत्तीलपेटक कीट की रोकथाम के लिए कार्बेरिल का 2.5 मि.ली. लीटर दवा का घोल 500 लीटर पानी में बनाकर फसल पर छिड़काव करें।

मसूर और मटर की फसल

- मसूर की फसल में रतुआ रोग के लक्षण दिखाई देते ही रतुआ रोधी प्रजाति इस रोग का प्रभाव निष्क्रिय करती है। रोग दिखाई देते ही फसल पर मेन्कोजेब के 0.25 प्रतिशत घोल (2.5 ग्राम दवा 1 लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। मसूर की फसल में पाउडरी मिल्ड्यू

रोग एरीसायफी पोलीगोनी नामक कवक से होता है। फूल आने की अवस्था अतिसंवेदनशील है। अनुकूल परिस्थितियों में यह रोग बहुत अधिक हानि पहुंचाने में सक्षम है। धीरे-धीरे यह फैल कर तनों, पत्तियों एवं फलियों पर फैल जाता है। रोगी फसल पर ट्रायडोमार्फ लीटर प्रति हैक्टर की दर से घुलनशील गंधक के 2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

- माहूं कीट, मसूर की फसल में पत्तियों तथा अन्य कोमल भागों का रस चूसकर हानि पहुंचाता है। इससे ग्रसित भाग सूख जाते हैं और पौधा कमजोर हो जाता है। तेलिया या थ्रिप्सकीट मसूर की पत्तियों, फूल एव फलियों पर पाया जाता है। पत्तियों से रस चूसते हैं जिससे उन पर सफेद रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं। मृदा में नमी की कमी से पौधों को अधिक हानि हो सकती है। माहूं तथा तेलिया नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 750 मि.ली. या फॉस्फोमिडान 85 ई.सी. 250 मि.ली. या डायमिथियेट 30 ई.सी. 500 मि.ली. मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर छिड़काव करें।
- मटर की फसल में चूर्णिल आसिता रोग पत्तियों तथा फलियों पर सफेद चूर्ण सा फैल जाता है। रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही सल्फरयुक्त कवकनाशी जैसे सल्फेक्स 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर या 3.0 कि.ग्रा./हैक्टर घुलनशील गंधक या कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम या ट्राइडोमार्फ (80 ई.सी.) 500 मि.ली. की दर से 800-1000 लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल में 2-3 छिड़काव करें। रतुआ रोग से पौधों की वृद्धि रुक जाती है। पीले धब्बे पहले पत्तियों पर और फिर तने पर बनने लगते हैं।

मटर

चने की फसल की देखभाल

- चने में आवश्यकता हो तो फूल आने से पूर्व ही सिंचाई करें। फूल आते समय सिंचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा फूल झड़ने से हानि होती है। चने की फसल बारानी क्षेत्रों में जल की आवश्यकता को मिट्टी की गहराई में संचित नमी से पूरा करती है। सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने तथा जाड़े की वर्षा न होने पर बुआई के 75 दिनों बाद सिंचाई करना लाभप्रद होता है। असिंचित क्षेत्रों में चने की कटाई फरवरी के अंत में होती है।
- चने की फसल में झुलसा रोग की रोकथाम के लिए जिंक मैग्नीज कार्बामेंट 2.0 कि.ग्रा. अथवा जीरम 90 प्रतिशत 2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
- फेरोमोन ट्रैप ऐसा रसायन है, जो अपने ही वर्ग के कीटों को संचार द्वारा आकर्षित करता है। मादा कीट में जो हारमोन निकलता है यह उसी तरह की गंध से नर कीटों को आकर्षित करता है। इन रसायनों को सेक्स फेरोमोन ट्रैप कहते हैं। इसका उपयोग चने के फलीछेदक कीट के फसल पर प्रकोप करने की समय की जानकारी के लिए किया जाता है। फेरोमोन का रसायन एक सेप्टा (कैप्सूल) में यौन-जाल में रख दिया जाता है। 5-6 फलीछेदक कीट के नर यौन-जाल में फंसने पर चने की फसल पर कीटनाशी दवाओं का प्रयोग कर देना चाहिए। 20 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से लगायें।

चने की प्रजाति पूसा-547

- किसान भाई यदि चने के खेत में चिड़िया बैठ रही हो तो यह समझ लें कि चने में फलीछेदक का प्रकोप होने वाला है। इन रसायनों का प्रयोग तभी करना चाहिए जब चना फलीछेदक का प्रकोप अत्यधिक हो। उसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. 750 मि.ली. या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 1.50 लीटर या इंडेक्सोकार्ब 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी या क्वीनालफॉस 25 ई.सी. 1-1.4 प्रति मि.ली. पानी या स्पाइनोसैड 45 प्रतिशत, 0.2 मि.ली. प्रति लीटर पानी या इमामेक्टीन बेंजोएट 5 प्रतिशत, 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव अवश्य करें।
- चने के फलीछेदक कीट नियंत्रण के लिए न्यूक्लियर पालीहेड्रोसिस वाइरस 250 से 350 शिशु समतुल्य 600 लीटर प्रति पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव फरवरी के अंतिम सप्ताह में करें। चने में 5 प्रतिशत एन.एस.के.ई. या 3 प्रतिशत नीम आयल तथा आवश्यकतानुसार कीटनाशी का प्रयोग करें।
- फूल एवं शुरूआत के समय एक या दो सिंचाई करना लाभप्रद होता है। फूलों एवं पत्तियों को पाले से सुरक्षा के लिए भी सिंचाई की आवश्यकता होती है। देर से बोई गई मटर की फसल में फली आने पर सिंचाई करें। अगेती फसल पकने की अवस्था में होगी, अत: समय पर कटाई करें।

धीरे-धीरे ये हल्के भूरे रंग के हो जाते हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिए हेक्साकोनाजोटा 1 लीटर या प्रोपीकोना 1 लीटर या डाइथेन एम.-45 को 2 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से 600-800 लीटर पानी में घोलकर 2-3 बार छिड़काव करें एवं उचित फसल चक्र अपनायें।

- फलीबेधक कीट फलियों में छेद बनाकर बीजों को नुकसान पहुंचाते

हैं। इसलिए फलियों पर सूक्ष्म छिद्रों से इसके मौजूद होने का पता लग जाता है। फली निकलने की अवस्था में फसल पर इमिडाक्लोप्रिड 0.5 प्रतिशत या डाइमेथोएट 0.03 प्रतिशत का 400-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। शीघ्र पकने वाली प्रजातियों का उपयोग एवं समय से बुआई फलीबेधक के प्रकोप से बचने में सहायक होते हैं। माहूं कीट पत्तियों व मुलायम तनों से रस चूसकर एक ऐसा चिपचिपा पदार्थ भारी मात्रा में स्रावित करता है, जिसके द्वारा काली फफूंद का आक्रमण इन भागों में हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए 0.05 प्रतिशत मेटासिस्टाक्स या 0.05 प्रतिशत रोगोर के घोल का छिड़काव 15-20 दिनों के अंतराल पर फसल पर कीटों के दिखाई देते ही एक या दो बार आवश्यकतानुसार करें।

राई और सूरजमुखी की फसल में देखभाल

- सूरजमुखी की फसल के लिए मिट्टी अच्छी तरह से छनी हुई और उपजाऊ होनी चाहिए। सूरजमुखी की संकर प्रजातियां जैसे-डी.आर.एस.एच-1, के.बी.एस.एच.-44, पी.एस.एच.एफ.-118, पी.एस.एच.एफ.-569, पी.ए.सी.-36, पी.ए.सी.-1091, के.बी.एस.एच.-1, एच.एस.एफ.एच.-878, के.बी.एस.एच.-41, के.बी.एस.एच.-53, आर.एस.एफ.एच-1, एल.एस.एफ.एच.-35, एम.एल.एस.एफ.एच.-47 और आर.एस.एफ.एच-130 एवं संकुल प्रजातियां जैसे-मॉडर्न व सूर्या आदि संस्तुति की गई है। बीजों में उत्पन्न होने वाले रोगों की रोकथाम के लिए 3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की मात्रा में थीरम या कैप्टॉन से उपचारित कर लेना चाहिए।
- बीज दर भूमि की दशा, दानों के आकार, अंकुरण प्रतिशत, बोने का समय एवं बोने की विधि पर निर्भर करती है। सिंचाई पर निर्भर फसल के लिए 4-5 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 30 सें.मी. एवं बीज की गहराई 4-5 सें.मी. गहरा होना चाहिए। उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर ही करना उचित रहता है। सिंचाई पर आधारित फसल के लिए 60:90:30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश की सिफारिश की जाती है। सिंचाई की फसल के लिए 50 प्रतिशत नाइट्रोजन+फॉस्फोरस एवं पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुआई के समय देनी चाहिए और शेष को दो बराबर-बराबर भाग करके बुआई के 30 और 55 दिनों के बाद डालना चाहिए। फॉस्फोरस को प्राप्त करने के लिए सिंगल सुपर फॉस्फेट को लेना चाहिए।
- **अंतर फसल प्रणाली:** तुर+सूरजमुखी (2:1/1:1/1:2), सूरजमुखी+मूंगफली (5:1/3:1), सूरजमुखी+सोयाबीन+सूरजमुखी (2:1) की दर से फसल बोना बहुत ही लाभदायक होता है।

सूरजमुखी डीआरएसएच-1

सब्जी वाली फसलों का उत्पादन एवं

कैसे लें सरसों की अधिक उपज

- सरसों की फसल में पेन्टेड बग कीट का नुकसान 4-5 पत्तियों की अवस्था तक अधिक रहता है। वयस्क कीट तथा उसका निम्फ पौधे के तने व पत्तियों से रस चूसते हैं। इससे पत्ते सफेद हो जाते हैं तथा बाद में मुरझाकर गिर जाते हैं। इस कीट का प्रकोप होने पर 2 प्रतिशत मिथाइल पैराथियान या 5 प्रतिशत मैलाथियान 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। राया-सरसों की फसल में माहूं या चेंपा कीट पौधे के तने, फूलों व फलियों से रस चूसता है तथा फसल को भारी नुकसान पहुंचाता है। जब कीट का प्रकोप औसतन 25 कीट प्रति पौधा हो जाए तो इसमें से किसी एक कीटनाशक जैसे-मैलाथियान 50 ई.सी. 1250 मि.ली. या फॉस्फोमिडान 85 डब्ल्यू.एस.सी. 250 मि.ली. या थायोमिडान 25 ई.सी. 1000 मि.ली.या मिथाइल डिमेटान 25 ई.सी. या डाईमेथोएट 30 ई.सी. या मोनोक्रोटोफॉस 35 डब्ल्यू.एस.सी. प्रति हैक्टर की दर से 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सरसों पूसा तारक

- सरसों की फसल में झुलसा या सफेद गेरुई रोग पत्तियों की निचली सतह पर सफेद फफूंद की वृद्धि दिखाई देती है। इस रोग से ग्रसित पत्तियों पर हल्के भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। इस रोग के लक्षण दिखने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या जाइनेब या मेन्कोजेब या केप्टाफाल (फोलटाफ) 2 ग्राम/लीटर पानी के दर से 500-800 लीटर पानी का घोल बनाकर 10-12 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव अवश्य करें। असिंचित क्षेत्रों में सरसों की कटाई का समय है अत: फसल को समय पर काट लें।
- सूरजमुखी की फसल सभी मौसमों में उगायी जा सकती है, फिर भी बुआई का समय इस तरह से निश्चित कर लेना चाहिए कि फूल लगने के समय लगातार बूंदा-बांदी, बादल छाए रहने या तापमान 38^0 सेल्सियस से अधिक रहने की स्थिति से बचा जा सके। जहां इसकी पारंपरिक रूप से खेती नहीं होती है वहां इसकी बुआई बसंत ऋतु में जनवरी से फरवरी के अंत तक की जा सकती है।

शरदकालीन गन्ने की फसल में देखभाल

- गन्ने के स्वस्थ बीज का ही चुनाव करें। बसन्तकालीन गन्ने की बुआई देर से काटे गए धान वाले खेत में और तोरिया, मटर व आलू की फसल से खाली हुए खेत में की जा सकती है। गन्ने की बुआई शुगर केन प्लान्टर मशीन से 75 सें.मी. की दूरी पर कूंड़ों में करना ज्यादा लाभदायक रहता है। फरवरी के दूसरे पखवाड़े में गन्ने की बुआई कर सकते हैं। शरदकालीन गन्ने में बुआई के 110-120 दिनों बाद नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा (60-75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) की टॉप ड्रेसिंग कर दें।

- **गन्ने की जल्दी तैयार होने वाली उन्नतशील प्रजातियां:** जैसे-सी.ओ. 0239, सी.ओ. 0238, सी.ओ. 0118, सी.ओ. 98014, सी.ओ. 98014, सी.ओ. 89003, सी.ओ.0237, को पंत 211, को पंत 3220, को-0238, को. 0239, को. 0118, को. 98014, को.शा. 687, यू.पी. 05125 आदि में से उपलब्धतानुसार प्रजातियों का प्रयोग करें। गन्ने की मध्य या देर से पकने वाली प्रमुख प्रजातियां को.शा. 7918, को.शा. 802, को.शा. 8118, को.शा. 767, को.शा. 8432, को.शा. 94257, को.शा. 96275, को.शा. पंत 84212, को.शा. 90223 आदि में से उपयुक्त प्रजाति का चुनाव करें। जलमग्न क्षेत्र के लिए को.शा. 96436, यू.पी. 9529, यू.पी. 9530, बी.ओ. 54 व बी.ओ. 91 आदि प्रजातियों का चुनाव करें। गन्ने का बीज जिस खेत से लेना हो, बुआई से दो सप्ताह पूर्व उसकी सिंचाई कर दें। एक हैक्टर बुआई के लिए 60-70 क्विंटल गन्ना पर्याप्त होता है। गन्ने के बीज को उपचारित करने के लिए 250 ग्राम एरीटान या 500 ग्राम एग्लाल का प्रयोग करें। अच्छी उपज के लिए गन्ना के बसंतकालीन फसल में 120-150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30-40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है।

- गन्ने की पेड़ी से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि फसल की कटाई जमीन से सटाकर करें तथा खेत से खरपतवार निकाल दें और सिंचाई करें व मिट्टी में ओट आने पर 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की पहली टॉप ड्रेसिंग करें और कल्टीवेटर से गुड़ाई करके उर्वरक को मिट्टी में मिला दें। गन्ने की दो कतारों के बीच मूंग या उड़द अथवा लोबिया या भिंडी की एक कतार की बुआई की जा सकती है।
- गन्ने की फसल को दीमक व अंकुरबेधक कीट से बचाने के लिए बुआई के बाद कूंड़ को ढकने से पूर्व 5 लीटर/हैक्टर की दर से क्लोरोपायरीफॉस को 2000 लीटर पानी में घोलकर कूंड़ों में छिड़काव करें अथवा 25 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से फोरेट 10 जी कूंड़ों में छिड़काव करें।

प्रबंधन

- पत्तागोभी की फसल में अवांछित पौधों को निकाले तथा माहूं कीट के शिशु व वयस्क दोनों ही पत्तों से रस चूसते हैं, जिससे पत्ते टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। अधिक प्रकोप से फूल नहीं बनते। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.ली./3 लीटर या 0.15 प्रतिशत मेटासिस्टाक्स या डाइमेथोएट 30 ई.सी.2 मि.ली./लीटर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर में से किसी एक रसायन को पानी में मिलाकर छिड़काव करें। अधिक ग्रसित पत्तों को नष्ट कर दें।
- गोभीवर्गीय सब्जियों में सिंचाई, गुड़ाई तथा पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का कार्य करें। फूलगोभी जब उचित आकार की हो जाये तब उसकी कटाई करें। गोभी की फसल में पत्ती खाने वाले कीट की रोकथाम के लिए एमामेक्टिन बेंजोएट 5 एस.जी. 1 ग्राम/2 लीटर या फेनवैलरेट 20 ई.सी. 1.5 मि.ली./2 लीटर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 3 मि.ली./लीटर या स्पिनोसिड 45 एस.सी. 1 मि.ली. /4 लीटर या बी.टी. 1 ग्राम/लीटर या नीम बीज अर्क (4 प्रतिशत) पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- आलू की फसल पर पछेती झुलसा रोग दिखाई दे तो इंडोफिल-45 दवा के. 0.2 प्रतिशत दवा का घोल बनाकर खड़ी फसल पर अच्छी तरह से छिड़काव करें। आलू के पत्ते काटने के बाद खुदाई करें, जिससे आलू का छिलका मजबूत हो जाता है। खुदाई करने के बाद आलू को छाया में ढेर लगाकर सुखायें और ऊपर से मिट्टी साफ कर लें एवं बिना

आलू

गोभीवर्गीय सब्जियां

कटे आलु को बोरों में भरकर शीतभंडार में भेजने की व्यवस्था करें।

- सफेद सूंडी आलू की फसल में मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। देर से खोदी गई फसल पर नुकसान अधिक होता है। इसके नियंत्रण के लिए वयस्क सूंडियों को मारने के लिए परपोषी पौधों पर कीटनाशकों जैसे क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. को 2.5 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर मानसून के तुरन्त बाद छिड़काव करना चाहिए। मिट्टी चढ़ाते समय पौधों के नजदीक दैहिक कीटनाशी जैसे फोरेट 10 प्रतिशत या कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत की 2.5-3.0 कि.ग्रा. वास्तविक मात्रा का प्रति हैक्टर की दर से उपचार करें।
- आलू, मिर्च और टमाटर की फसल को पछेता झुलसा रोग तथा माहूं से बचाने के लिए मैंकोजेब 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम/लीटर पानी) के साथ मोनोक्रोटोफॉस 0.04 प्रतिशत (4 मि.ली. 10 लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करें।
- टमाटर की ग्रीष्मकालीन फसल में रोपाई के 25-30 दिनों बाद उन्नत किस्मों में प्रति हैक्टर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (88 कि.ग्रा. यूरिया) व संकर असीमित बढ़वार वाली किस्मों के लिए 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (120-130 कि.ग्रा. यूरिया) की प्रथम टॉप ड्रेसिंग करें।
- ग्रीष्मकालीन टमाटर की फसल में रोपाई के 25-30 दिनों बाद उन्नतशील प्रजातियों में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और संकर प्रजातियों में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की पहली टॉप ड्रेसिंग करें।

टमाटर

ग्रीष्मकालीन चौलाई

- सब्जी मटर में फलियां बनते समय खेत में हल्की नमी होना जरुरी है। चूर्णित आसिता रोग का प्रकोप होने पर पौधों की पत्तियां, तने, शाखाएं तथा फलियां बुकनी जैसे पदार्थ से ढक जाती है। रोकथाम के लिए सल्फरयुक्त रसायन जैसे हेक्साल, एलोसोल, सल्फेक्स 2-0 ग्राम/लीटर अथवा कैराथेन 1 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर रोग प्रकट होने पर छिड़काव करें तथा 15 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।
- हरी फलियां जब पूर्ण भरी हुई अवस्था में हों अथवा उनका रंग गहरे हरे से हल्का हरा हो, तब तुड़ाई करें। हरी व मुलायम फलियां तोड़ें व वर्गीकरण कर पैकिंग के बाद बाजार भेजें। हरे दानों का प्रसंस्करण कर उपयोग करें।
- ग्रीष्मकालीन चौलाई की बुआई के लिए 2-3 कि.ग्रा./हैक्टर बीज रेत में मिलाकर छिड़काव या 20-25 सें.मी. दूरी पर कतारों में करें। चौलाई में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 30 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर बुआई के समय प्रयोग करें।
- जनवरी माह में पॉलीहाउस के अंदर बैंगन की नर्सरी तैयार करें। फरवरी के मध्य खेत में रोपाई का काम शाम के समय करें रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करने की आवश्यकता है। रोपाई के लिए पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 75×60 सें.मी. रखी जाती है तथा कम बढ़वार वाली किस्मों के लिए 60×45 या 60×60 सें.मी. दूरी पर्याप्त है। खेत की तैयारी के समय सड़ी हुई गोबर की खाद डालें। अच्छी फसल लेने के लिए 60-80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60

प्याज में रोग नियंत्रण

प्याज में प्रति हैक्टर नाइट्रोजन की सम्पूर्ण 100 कि.ग्रा. मात्रा का 1/3 भाग (72 कि.ग्रा. यूरिया) रोपाई के 30 दिनों बाद सिंचाई कर टॉप ड्रेसिंग करें। आवश्यकतानुसार समय पर निराई करें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए स्टॉम्प का 3-5 लीटर/हैक्टर की दर से रोपाई के बाद सिंचाई से पहले छिड़काव

करें। प्याज में नील लोहित धब्बा (पर्पल ब्लॉच) रोग इस बीमारी में धब्बे से बन जाते हैं, जो मध्य से बैंगनी रंग के हो जाते हैं। नियंत्रण के लिए ब्लाइटॉक्स 50 (2.0 ग्राम/लीटर पानी) या डायथेन एम-45 या 0.2 प्रतिशत मैंकोजेब आवश्यकतानुसार 10 दिनों के अंतराल पर और थ्रिप्स कीट लगने पर 0.6 प्रतिशत फॉस्फेमिडान पानी में घोलकर छिड़काव करें।

सब्जी मटर

कि.ग्रा. पोटाश की मात्रा तथा 150 कि.ग्रा./हैक्टर नाइट्रोजन की आधी मात्रा अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला दें, बाकी शेष नाइट्रोजन की मात्रा को फूल आने के समय प्रयोग करें व प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

- लहसुन में यदि नाइट्रोजन की दूसरी टॉप ड्रेसिंग न की हो तो यूरिया की 75 कि.ग्रा. मात्रा बुआई के 60 दिनों बाद डालकर सिंचाई करें। रोग और कीटों से बचाव के लिए एक सुरक्षात्मक छिड़काव मैंकोजेब 2 ग्राम तथा फॉस्फेमिडान 0.6 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- आवश्यकतानुसार भूमि में नमी की मात्रा कम होने पर हल्की सिंचाई करें। राजमा में फलियां बनते समय दूसरी सिंचाई कर दें।
- गर्मी के मौसम में लोबिया की बुआई फरवरी-मार्च में की जाती है। लोबिया

लहसुन

की उन्नतशील प्रजातियां काशी गौरी, काशी कंचन, पूसा कोमल (बैक्टीरियल ब्लाइट प्रतिरोधी), पूसा सुकोमल (मोजैक वाइरस प्रतिरोधी),अर्का गरिमा, लोबिया 263, पूसा फागुनी तथा पूसा दो फसली आदि में से उपयुक्त प्रजाति का चुनाव करें।

- साधारणतया 20-25 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर की दर से पर्याप्त होता है। बीज की मात्रा प्रजाति तथा मौसम पर निर्भर करती है। बेलदार प्रजातियों के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 80-90

भिंडी की देखरेख

गर्मी के मौसम में भिंडी की बुआई 20 फरवरी से 15 मार्च तक का समय बुआई के लिए उपयुक्त है। भिंडी की पूसा ए-4, पंजाब-7, पंजाब-8, हिसार

उन्नत, पंजाब पदमिनी, परभणी क्रान्ति, वर्षा उपहार, पूसा सावनी एवं अर्का अनामिका आदि में से उपयुक्त उन्नतशील प्रजाति का चुनाव करें। फरवरी में भिंडी की बुआई के लिए 18-20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। गर्मियों में पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 30-45×20 सें.मी. पर करें तथा बीज की गहराई लगभग 4-5 सें.मी. रखें। बुआई से पूर्व भिंडी के बीज को 24 घंटे पानी में भिगो देना चाहिए। भिंडी की अच्छी फसल लेने के लिए 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के समय खेत में मिला दें तथा बची हुई आधी नाइट्रोजन की मात्रा फसल में फूल आने की अवस्था में प्रयोग करें।

लोबिया

सें.मी. तथा झाड़ीदार प्रजातियों के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45-60 सें.मी. तथा बीज से बीज की दूरी 10-15 सें.मी. रखी जाती है। बुआई से पहले बीज का राइजोबियम कल्चर से उपचार कर लेना चाहिए। बुआई के समय भूमि में बीज के जमाव के लिए पर्याप्त नमी का होना बहुत आवश्यक है।

- लोबिया की अच्छी फसल लेने के लिए 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर खेत में अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला देना चाहिए तथा 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की मात्रा फसल में फूल आने पर प्रयोग करें। लोबिया की नर्म व कच्ची फलियों की तुड़ाई 4-5 दिनों के अंतराल पर करें। बेलदार प्रजातियों में 8-10 तुड़ाई तथा झाड़ीदार प्रजातियों में 3-4 तुड़ाई की जा सकती है।

लौकी

करेला

करेला एवं चिकनी व धारीदारी तोरी की बुआई 40 सें.मी. चौड़ी नाली की दोनों मेड़ों पर 2.5×0.60 मीटर की दूरी पर करें। करेला की पूसा दो

मौसमी, पूसा विशेष, पूसा हाइब्रिड-2, कल्याणपुर बारहमासी, कल्याणपुर सोना, फैजाबादी बारहमासी, कोयम्बटूर लौंग तथा चिकनी तोरी की पूसा स्नेहा आदि प्रमुख प्रजातियां हैं। करेला, धारीदारी तोरी व चिकनी तोरी की बुआई 40 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर मेड़ों के दोनों तरफ 2.5×0.60 मीटर की दूरी पर करनी चाहिए। करेला के लिए 6-7 कि.ग्रा. एवं तोरी के लिए 5-5.5 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है।

- बसंत-गर्मी के मौसम में लौकी की बुआई फरवरी-मार्च के समय बुआई के लिए उपयुक्त है। लौकी की उन्नतशील प्रजातियां जैसे-पूसा संतुष्टि, पूसा नवीन, पूसा संदेश, पूसा मंजरी, पूसा समर प्रोलीफिक लौंग,आजाद हरितएपूसा समृद्धि, पी.एस.पी., लएमेघदूत एवं पूसा हाइब्रिड-3 आदि प्रमुख हैं। लौकी की बुआई 3×0.75 मीटर पर कर सकते हैं। इसके लिए प्रति हैक्टर 4-5 कि.ग्रा. बीज प्रर्याप्त होता है। बुआई 80-100 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर उसकी दोनों मेड़ों पर दो बीज प्रति स्थान पर करें। बुआई के समय 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है।
- **पॉलीहाउस विधि से अगेती खेती:** कद्दूवर्गीय सब्जियों की उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में गर्मी के मौसम के लिए अगेती फसल तैयार करने के लिए पॉलीहाउस में जनवरी में झोपड़ी के आकार का पॉलीहाउस बनाकर पौध तैयार कर लेते हैं। जब फरवरी में पाला पड़ने का डर समाप्त हो जाये तो पॉलीथीन की थैली को काटकर हटाने के बाद पौधे की मिट्टी के साथ खेत में बनी नालियों की मेड़ पर रोपाई करके पानी लगाते हैं। इस प्रकार एक से डेढ़ माह बाद अगेती फसल तैयार हो जाती है, जिससे किसान अगेती फसल तैयार करके अधिक लाभ कमा सकता है।
- खरबूजा की बुआई 1.5-2.0×0.50 मीटर की दूरी पर 30 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर उसकी दोनों मेड़ों पर 2.5-3.0 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बीज की बुआई करें। खरबूजे की प्रजातियां जैसे-पूसा मधुरस, पूसा शर्बती, हरा मधु, लखनऊ बट्टी, पंजाब हाइब्रिड, पंजाब सुनहरा एवं पंजाब अनमोल प्रमुख हैं।
- खीरे के लिए बीज दर 2-2.5 कि.ग्रा./हैक्टर पर्याप्त होता है। खीरे की बुआई 1.5-2×0.50 मीटर पर 30 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर उसकी दोनों मेड़ों पर करें। खीरे की प्रजातियां जैसे-के.एच. 3, पोइंसेट, जापानीज, पूसा संयोग, खीरा-75, जापानी लौंग ग्रीन, प्रिया व पूसा उदय आदि प्रमुख हैं। खीरे के लिए प्रति हैक्टर 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन,

चप्पन कद्दू

40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रयोग करें।

- तरबूज की प्रजातियां जैसे-अर्का माणिक, शुगर बेबी व स्थानीय किस्मों का प्रति हैक्टर 4-5 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। तरबूज की बुआई 2.5×0.50 मीटर की दूरी पर 40-50 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर मेड़ों के दोनों तरफ करें।
- ककड़ी व टिंडा के बीज की बुआई कतार से कतार 2 मीटर की दूरी पर 30-40 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर उसकी दोनों मेड़ों पर 40-45 सें.मी. की दूरी पर करते हैं। टिंडा के लिए 6-7 कि.ग्रा. व ककड़ी के लिए 2-3 कि.ग्रा./हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। टिंडा की पंजाब टिंडा, अर्का टिंडा ए.एस.-48, हिसार सलेक्शन, पंजाब चमन व बीकानेरी ग्रीन तथा ककड़ी की लखनऊ अर्की कल्याणपुर टाइप, रजनीव करनाल सलेक्शन आदि प्रमुख प्रजातियां हैं।
- कुम्हड़ा/कद्दू की बुआई 3×0.75 मीटर की दूरी पर 80-100 सें.मी. चौड़ी नाली बनाकर दोनों मेड़ों पर

शिमला मिर्च

चारे वाली फसलों में देखभाल

- जई में पहली कटाई, बुआई के 55 दिनों बाद करें और कटाई के बाद सिंचाई करके प्रति हैक्टर 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की दूसरी टॉप ड्रेसिंग कर दें।
- बरसीम, रिजका व जई की हर कटाई के बाद 18-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें इससे अगली कटाई जल्दी मिलेगी। बरसीम या अन्य हरे चारे पशुओं की आवश्यकता से अधिक होने पर सुखाकर गर्मियों के लिए भंडारित कर लें।

बरसीम

- गर्मी में चारे के लिए मक्का, ज्वार,लोबिया की बुआई के दूसरे पखवाड़े से प्रारंभ की जा सकती है।
- मक्का के लिए विजय, गंगा-2 व अफ्रीकन टाल प्रजातियों की बुआई के लिए 40 कि.ग्रा. बीज, चरी के लिए एम.पी. चरी, पूसा चरी-23 व पायनियर की संकर चरी की बुआई 25 कि.ग्रा. तथा लोबिया की रशियन जाइंट, यू.पी.सी.-5286 प्रजातियों का 35 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- मेथा में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें और 30 दिनों बाद निराई-गुड़ाई करें।
- एक हैक्टर खेत के लिए 400-500 कि.ग्रा. मेंथा जड़ों की जरूरत पड़ती है। अच्छी फसल लेने के लिए 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन 75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

जई

- बहुवर्षीय घासें खेत में या मेड़ों पर बहुवर्षीय घासें जैसे नेपियर, गिनी, सिटेरिया आदि की रोपाई कर सकते हैं। इनमें रोपाई के समय 100 क्विंटल गोबर की खाद, 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

3-4 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बीज की बुआई करें। कुम्हड़ा/कद्दू की पूसा विकास, पूसा विश्वास, पूसा हाइब्रिड-1, अर्का सूर्यमुखी, पूसा अलंकार एवं अर्का चन्दन तथा चप्पन कद्दू की प्रोलिफिक, ऑस्ट्रेलियन ग्रीन, पैटी पेन, पूसा अलंकार व अर्ली येलो आदि प्रमुख प्रजातियां हैं। चप्पन कद्दू के लिए 5-6 कि.ग्रा./हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है।

- शिमला मिर्च की फसल में निराई-गुड़ाई करें तथा खड़ी फसल में 50 कि.ग्रा. यूरिया का प्रयोग करें। रोगों तथा कीटों से बचाने के लिए 0.2 प्रतिशत इंडोफिल-45 नामक रसायन का एक छिड़काव अवश्य करें।
- बेल वाली सब्जियों में खेत की तैयारी करते समय 150-200 क्विंटल/हैक्टर गोबर की खाद व 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है।
- गाजर, शलजम व मूली बीज वाली फसल में 50 कि.ग्रा. यूरिया/हैक्टर की दर से प्रयोग करके हल्की सी सिंचाई करें तथा 0.15 प्रतिशत मेटासिस्टाक्स नामक रसायन का एक छिड़काव अवश्य करें। सामान्य फसल से तैयार जड़ों की खुदाई करें।
- धनियां, मेथी और पालक बाजार वाली फसल में से पत्तियों की कटाई करें व तुरन्त गठियां बांधकर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। बीज वाली फसल से अवांछित पौधों को निकाले एवं साथ ही निराई-गुड़ाई करें। कीटों से बचाव के लिए 0.2 प्रतिशत रोगोर नामक रसायन का एक छिड़काव अवश्य करें।

बागवानी फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- अमरूद के बीजू पौधे तैयार करने के लिए बीजों की पौधशाला में बुआई करें। अमरूद के एक वर्ष के पौधे के लिए 10 कि.ग्रा. कम्पोस्ट/गोबर खाद, 30 ग्राम नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस एवं 60 ग्राम पोटाश व 6 वर्ष या उससे अधिक उम्र के पौधे के लिए यह मात्रा बढ़कर क्रमशः 10 कि.ग्रा. कम्पोस्ट/गोबर की खाद, 180 ग्राम नाइट्रोजन फॉस्फोरस तथा 360 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। अमरूद की फसल में एंथ्रेक्नोज रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटाक्स (2 ग्राम/लीटर) का 20 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करना चाहिए।
- सिंचाई की सुविधा होने पर आम, अमरूद, आंवला, कटहल, लीची व

आम

अंगूर

पपीता के बाग का रोपण करें।

- फलों के नये व पुराने बागानों में अंतरासस्य के रूप में लोबिया, मिर्च टमाटर व भिंडी आदि की बुआई/रोपाई अवश्य करें।
- आम में चूर्णी आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) की रोकथाम के लिए 250 ग्राम कैराथेन का 500 लीटर पानी में या ट्राइडेमेफान 0.1 प्रतिशत (1 मि.ली./लीटर) या डाइनोकैप 0.1 प्रतिशत (1

लीची

मि.ली./लीटर) या गंधक (500 ग्राम/पौधा) चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए या डायानोकेप (1 मि.ली./लीटर पानी) का छिड़काव फरवरी-मार्च में 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए। आम में भुनगा कीट (मैंगो हॉपर) कीट कोमल प्ररोहों, पत्तियों तथा पुष्पक्रमों से रस चूसते हैं और फल गिरने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कार्बोरिल (2 मि.ली./लीटर पानी) या क्लोरोपाइरीफॉस (5 मि.ली./लीटर पानी) या मोनोक्रोटोफॉस नामक रसायन की 10 मि.ली. मात्रा को 10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। फॉस्फेमिडान 0.6 मि.ली./लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

- केले के बगीचों से सूखी पत्तियां निकाल कर साफ सफाई करें। इसके अंत तक नाइट्रोजन व पोटाश वाली उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई कर दें। माहूं की रोकथाम के लिए क्विनालफॉस (25 ई.सी.) 1.0 लीटर/हैक्टर की दर से छिड़काव कर दें।
- लीची के एक वर्ष के पौधे में 5 कि.ग्रा. कम्पोस्ट/गोबर खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस एवं 25

अमरूद

मेंथा एवं वानिकी पौधों का प्रबंधन

- फरवरी में बोई जाने वाली मेंथा एक प्रमुख नगदी फसल है। मेंथा की उन्नतशील प्रजातियां कोशी, गोमती, हाइब्रिड-77 व एम.एस.एस.-1 आदि का चयन करें। मेंथा फसल के लिए मध्यम से लेकर हल्की भारी भूमि उपयुक्त रहती है। जल निकास का उचित प्रबंध आवश्यक है। मेंथा की बुआई पूरे फरवरी में कर सकते हैं। बुआई के लिए 400-500 कि.ग्रा. जड़ें प्रति हैक्टर पर्याप्त होती हैं। जड़ों के 5-7 सें.मी. लंबे टुकड़े जिसमें 3-4 गाठें हों को काटकर 5-6 इंच की गहराई पर 45-60 सें.मी. की दूरी पर बनी कतारों में बुआई करें। बुआई के समय 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन 75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। बुआई के तुरंत बाद एक हल्की सिंचाई अति आवश्यक है। अन्य सिंचाइयां आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर करते रहें।

मेंथा

- मेंथा में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें और 30 दिनों बाद निराई-गुड़ाई करें।
- पॉपलर की प्रजातियां जैसे एल-51, एल-74, एल-188, एल-247, जी-3 व जी-48 कृषि वानिकी प्रणाली के लिए उपयुक्त हैं। पॉपुलर के नये पौधे कटिंग विधि से सफलतापूर्वक तैयार किए जा सकते हैं। पॉपलर के पौधों को फरवरी के प्रथम पक्ष तक लगाने का समय है।

पॉपलर

- पॉपलर का पेड़ गहरी उपजाऊ अच्छे जल निकास वाली भूमि में अच्छा होता है। इसे फरवरी में कलमों द्वारा 2×2 फुट दूरी पर नर्सरी में लगाया जा सकता है तथा अगले वर्ष पौधों को जनवरी-फरवरी में खेत में लगा सकते हैं। नर्सरी में कलमें लगाने से पहले कैप्टॉन या डायथैन (0.3 प्रतिशत) घोल में डुबोएं ताकि रोगों से बचाव रहे। पौधों को 3 फुट गहरे गड्ढे खोदकर ऊपर की आधी मिट्टी में गोबर की सड़ी-गली खाद मिलाकर भरें तथा पूरा पानी लगाएं। पौधों को मेडों पर पंक्तियों में 10 फुट दूरी पर तथा सिंचाई नाली के दोनों ओर कतारों में 7 फुट दूरी पर लगाएं।

गुलाब

गुलदावदी

ग्लेडियोलस

ग्राम पोटाश की मात्रा जिसे क्रमशः बढ़ाकर 10 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के पौधे में 50 कि.ग्रा. कम्पोस्ट/गोबर खाद, 250 ग्राम नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस एवं 500 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

- फलवृक्षों में उर्वरक देने के लिए अच्छा होगा कि वृक्ष के मुख्य तने से 1-2 मीटर की दूरी पर लगभग 30 सें.मी. चौड़ी एवं 15-20 सें.मी. गहरी नाली बनाकर उसमें उर्वरकों का मिश्रण छिड़क दें तथा ऊपर से मिट्टी से ढक देने के बाद 10-15 सें.मी. सिंचाई कर दें।
- पौधशाला में अंगूर की स्वस्थ कलम 75×75 सें.मी. चौड़े तथा गहरे गड्ढों में 1:1 गोबर की खाद तथा मिट्टी के मिश्रण भरने के बाद जनवरी-फरवरी में लगानी चाहिए। अंगूर के श्यामव्रण रोग की रोकथाम के लिए ब्लाइटाक्स-50 दवा का छिड़काव करना चाहिए। अंगूर के बाग में यदि जनवरी में खाद एवं उर्वरक नहीं दिया गया है तो फरवरी में प्रति पौधे की दर से प्रथम वर्ष 10 कि.ग्रा. कम्पोस्ट/गोबर खाद के अलावा 100 ग्राम नाइट्रोजन, 60 ग्राम फॉस्फोरस एवं 80 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें। पांच वर्ष या इससे ऊपर यह मात्रा बढ़ाकर 500 ग्राम नाइट्रोजन, 300 ग्राम फॉस्फोरस एवं 400 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

आड़ू

- नीबू में मूलवृंत तैयार करने के लिए पौधशाला में बीजों की बुआई करें। फलदार बागों में नाइट्रोजन व पोटाश वाली उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई कर दें। लेमन की कलमों की रोपाई पौधशाला में करें। नीबू के एक वर्ष के पौधे के लिए 10 कि.ग्रा. कम्पोस्ट/गोबर खाद, 25 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 25 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें। उससे अधिक आयु के पौधे के लिए यह मात्रा बढ़कर क्रमशः 90-100कि.ग्रा. कम्पोस्ट/गोबर की खाद, 250 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस व 250 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।
- पिछले मौसम में लगाये गए पपीता के पौधों में नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई करने के बाद एक सिंचाई कर दें।
- बेर के बाग को साफ रखें। फलछेदक कीट की रोकथाम के लिए मैलाथियान 0.5 प्रतिशत का छिड़काव करें।
- आंवला के नये व फलदार वृक्षों में नाइट्रोजनधारी व पोटाश उर्वरकों का प्रयोग करके गुड़ाई कर दें।
- कटहल के फलदार बागों में नाइट्रोजनधारी व पोटाश उर्वरकों का प्रयोग करें। पत्ती के काले धब्बे की रोकथाम के लिए ब्लाइटाक्स-50 के घोल का छिड़काव करें।
- आड़ू की फसल में पर्ण-कुंचन माहूं की रोकथाम के लिए ऑक्सीडिमेटान मिथाइल 25 ई.सी. (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करें।
- लोकाट की फसल में फल छेदक एवं फल विगलन कीट की रोकथाम के लिए मैलाथियान 0.2 प्रतिशत व ब्लाइटाक्स-50 (0.25 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें।

पुष्प व सुगंध वाले पौधों का प्रबंधन

- गुलाब के सूखे फूलों व अनावश्यक अंकुरों को तोड़ दें, नये पौधे लगाना तथा बडिंग का कार्य करें। गुलाब की बसंतकालीन बहार लेने के लिए घुली हुई खाद देनी चाहिए तथा आवश्यकतानुसार सिंचाई व निराई-गुड़ाई अवश्य करें। माहूं की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.4 प्रतिशत (1 मि.ली./लीटर) का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- गुलदावदी के सकर्स को अलग करके गमलों में लगा दें।
- ग्लैडियोलस की मुरझाई हुई टहनियों को निकाल दें तथा स्पाइक के नीचे के फूल थोड़ा खिलने के बाद डंठल को काटकर विपणन के लिए भेजें। ग्लैडियोलस में आवश्यकतानुसार सिंचाई व निराई-गुड़ाई करें।
- रजनीगंधा के बल्बों के रोपण से 10-15 दिनों पूर्व क्यारियों में 45 सें.मी. गहरी खुदाई करके प्रति वर्गमीटर की दर से 10 कि.ग्रा. गोबर या कम्पोस्ट खाद प्रति वर्ग मीटर तथा सिंगल सुपर फॉस्फेट व पोटाश प्रत्येक 80-100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से बेसल ड्रेसिंग करें।
- गर्मी के फूलों जैसे जीनिया, सनफ्लावर, पोर्चूलाका व कोचिया के बीजों को नर्सरी में बोयें।
- बसन्तकालीन बहार के लिए घुली हुई खाद देनी चाहिए तथा आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई व सिंचाई करते रहें।

भाकृअनुप की झांकी 'मिश्रित खेती-आय दोगुनी'

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा गणतंत्र दिवस परेड समारोह–2018 में प्रस्तुत झांकी में समेकित कृषि प्रणाली को दर्शाया गया था। यह कृषि प्रणाली दो या अधिक कृषि उद्यमों के मिश्रण पर आधारित है और इसमें न्यूनतम संसाधन स्पर्धा के अलावा अधिकतम आपसी परिपूरकता की स्थिति होती है। इससे पर्यावरण हितैषी कृषि उत्पादन, रोजगार, आय एवं पारिवारिक पोषण में भी सहायता मिलती है।

हमारे देश में फसल तथा पशुपालन (गाय, भैंस, बकरी, भेड़, सूअर आदि) पर आधारित कृषि प्रणाली काफी लोकप्रिय है और 86 प्रतिशत से ज्यादा किसान इससे जुड़े हुए हैं। समेकित कृषि प्रणाली मॉडल में फसल पद्धतियों, बागवानी, डेरी, पोल्ट्री, सूअरपालन तथा जलजीव संवर्द्धन भी शामिल हैं जिनका चयन क्षेत्र, भू स्वामित्व, श्रम उपलब्धता तथा निवेश के लिए धनराशि की उपलब्धता पर निर्भर करता है। यह कृषि प्रणाली गुणवत्तापूर्ण आहार के साथ कृषि, पोषण एवं जलवायु अनुकूल कृषि तथा दोगुनी कृषि आय हेतु छोटे एवं सीमांत कृषकों के लिए विशेष तौर पर उपयुक्त है।

झांकी के अगले हिस्से में कृषकों के लिए आय बढ़ोतरी में मददगार और जलवायु हितैषी कृषि तकनीकियों का विकास करते वैज्ञानिक दर्शाए गए हैं। इस प्रणाली में जैविक फसल पद्धति पर आधारित फसल प्रणाली के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है, जो कि देश के पूर्वी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। मध्य भाग में किसानों की खुशहाली को प्रदर्शित किया गया है। यह उनकी वर्षपर्यन्त मेहनत के सुपरिणाम को दर्शाता है। इसमें वे अपनी प्रसन्नता को लोकगीतों एवं नृत्य के जरिये सामुदायिक स्तर पर मनाते हुए दिखा रहे हैं। कृषि सफलता का उत्सव बिहू नृत्य के माध्यम से भी दिखाया गया है। झांकी के पिछले हिस्से में कृषि एवं मानव सभ्यता के उद्भव के बाद से ही मानव आहार में पशुपालन से प्राप्त उत्पादों को फसल उत्पादन के साथ पूरक आहार के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार देखा जाए तो पशुधन, समेकित कृषि प्रणाली का ही अभिन्न अंग है। कृषकों को नई सूचना प्रौद्योगिकी तथा मोबाइल एवं विभिन्न ऐप्स के माध्यम से प्राप्त जानकारियों से भी लाभ मिल रहा है।

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रकाशन

JOURNALS

HANDBOOKS

भाकृअनुप
ICAR

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:
व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012
टेलिफैक्स: 91-11-25843657; ई-मेल: bmicar@icar.org.in
वेबसाइट: www.icar.org.in

डा. सतेन्द्र कुमार सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह